प्रकाशक

रामलाल पुरी

आत्माराम एण्ड सन्स

काश्मीरी गेट दिल्ली-६

मूल्य ढाई रुपया

प्रथम संस्करण—जुलाई, १९५१

द्वितीय संस्करण—जुलाई, १९५४

मुद्रक

अमरजीतसिंह नलवा

सागर प्रेस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

आशा और ऊषा को .

हैं शपथ में देश की भूली कहानी,
हैं शपथ में देश की भूली जवानी,
चिर नई इतिहास की भाषा पुरानी,
पड़ी संसार को फिर-फिर सुनानी ।
मैं तुम्हें कुछ दे न पाया,
क्योंकि जग से ले न पाया,
पर तुम्हें देने हृदय के,
कुञ्ज से यह फूल लाया ।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

स्पष्टीकरण

"शपथ" ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नाटक है। दशपुर (मध्य भारत स्थित वर्तमान मंदसोर) में आज भी एक प्रस्तर स्तंभ पड़ा हुआ है जिस पर लिखा हुआ है—"उसने उन प्रदेशों को भी जीता जिन पर गुप्त सम्राटों का आधिपत्य नहीं था और न हो जहां राजाओं के मुकुटों को ध्वस्त करने वाली हूणों की आज्ञा ही प्रवेश कर पायी थी। लौहित्य से लेकर महेन्द्र पर्वत तक और गंगा से—स्पष्ट हिमालय से—लेकर पश्चिम पयोधि तक के प्रदेशों के सामंत उसके चरणों पर लोटते थे। मिहिरकुल ने भी जिसने भगवान् शिव के अतिरिक्त और किसी के सामने सर नहीं नवाया, अपने मुकुट के पुष्पों द्वारा युगल चरणों की अर्चना की।"

यह प्रशस्ति वत्स भट्ट नामक कवि ने शपथ के नायक यशोधर्मन के सम्बन्ध में लिखी है। यशोधर्मन का मूल नाम विष्णुवर्धन था। उसके कहीं के वंशानुगत राजा होने का इतिहास में कोई प्रमाण नहीं है। वह साधारण व्यक्ति था, किन्तु उसने जन-मत को उत्तेजित कर एक सफल सशस्त्र राजनीतिक क्रान्ति की; यही इस नाटक का प्रधान विषय है।

हूणों के समान आतंककारिणी, दुर्धर्ष शक्ति संसार के इतिहास में दूसरी नहीं हुई। इन्होंने सारे यूरोप को रौंद डाला था और जब अपना मुख भारत की ओर फेरा तो इन्हें शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य से टक्कर लेनी पड़ी। महान् पराक्रमी सम्राट स्कंदगुप्त जीवन भर हूणों के टिड्डी दल को भारत में न घुसने देने का प्रयास करता रहा इसी प्रयास में उसने वीर-गति पाई। स्कंदगुप्त के पश्चात् कोई प्रबल व्यक्ति ऐसा न हुआ जो हूण शक्ति के तूफ़ान के सामने खड़ा होता।

हूणों ने, जो भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश से ही टकरा-टकरा कर रह जाते थे, अग्रसर होकर मालव प्रदेश तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। गुप्त साम्राज्य अंतिम श्वास ले रहा था। भारत के अन्य राजा अपने-अपने प्रदेशों में मुंह छुपाए बैठे थे, उन्हें यह नहीं सूझता था कि अपने शत्रु को संगठित होकर पराजित कर भारत से निकाला जाए—तब जनता में से एक वीर प्राण खड़ा होकर विश्व-विजयी हूणों की शक्ति को धूल में मिलाकर देश को स्वतन्त्र करता है। वास्तव में यह घटना भारतीय प्राणों को ओज, आत्मविश्वास और बल प्रदान करने वाली है।

"शपथ" में भारतीय इतिहास के आधार पर भारतीयों के उन गुणों और संस्कारों का उल्लेख है जिनके कारण भारत तेजस्वी, वीर और बलवान बना था उन निर्बलताओं और त्रुटियों का भी—जिनके कारण भारत को अनेक बार विदेशी शक्तियों से पराजित होना पड़ा।

इस समय सुदीर्घ काल तक पराधीन रहने के पश्चात् भारत स्वतन्त्र हुआ है, किन्तु दुःख की बात है कि जिन भूलों और जिन जातीय दुर्गुणों के कारण भारत बार-बार पराधीन हुआ है उन्हें फिर दोहराया जा रहा है। यह शुभ चिह्न नहीं है। हमें अपने देश के इतिहास से शिक्षा लेनी चाहिए। इतिहास के अध्ययन का अर्थ तिथियों, घटनाओं और राजाओं के नामों को याद कर लेना भर नहीं है। इतिहास तो हमें बताता है कि हमें क्या करना चाहिए, क्या नहीं—किस तरफ जाने में पतन है, किधर जाने में उत्थान—कहाँ मरण है, कहाँ जीवन।

"शपथ" केवल अतीत काल का दर्पण ही नहीं है—अपितु वर्तमान के लिए प्रकाश-स्तम्भ है। इसमें मैं नहीं बोला हूँ—देश के बोलते प्राण बोल रहे हैं। यह गम्भीरता से अध्ययन और मनन करने की वस्तु है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पात्र-परिचय

विष्णुवर्धन (यशोधर्मन)	दशपुर के विपयपति का पुत्र (जो जन-नायक बना)
वत्स भट्ट	विष्णुवर्धन का मित्र (कवि और विष्णुवर्धन का महामन्त्री)
मिहिरकुल	पहले हूण यवराज, पश्चात् सम्राट
धन्यविष्णु	मालव प्रदेश का हूणो के आधीन राजा
अभयदत्त	विष्णुवर्धन का सधिविग्रहक
धर्मदास	विष्णुवर्धन का बलाधिकृत
जयदेव	विष्णुवर्धन का सहायक सैनिक
महाज्ञान	बौद्ध भिक्षु
हेमचन्द्र	दशपुर का नगर-श्रेष्ठी
हूण सेनापति	मिहिरकुल का विश्वासपात्र सेनापति
सुहासिनी	धन्यविष्णु की सहोदरा, विष्णुवर्धन की प्रेयसी
पार्वती	विष्णुवर्धन और मदाकिनी की जननी
मदाकिनी	विष्णुवर्धन की सहोदरा
कचनी	उज्जयिनी की प्रमुख नर्तकी
उमा	जयदेव की पत्नी

केवल एक या दो दृश्यो में कुछ क्षणो के लिए आने वाले पात्रो का परिचय उन्हीं दृश्यो मे मिल जाता है । उनमें—मारुत (एक मालव सैनिक), उज्जयिनी का नगर सेठ, चर्मवती तट का नौका-सचालक, मालती और मयूरी (कचनी की दासियां), मदिर का पुजारी, गुप्तचर, द्वारपाल, सैनिक, नागरिक, परिचायक, परिचारिकाएँ, मधुबालाएँ, मधुशाला का स्वामी, मालू (एक भील) भीमदेवी (एक सैनिक), एक चाडालिन आदि

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

[समय—प्रभात। स्थान—दशपुर में विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) के भवन से संलग्न वाटिका। एक विशाल आम्रवृक्ष की शाखा पर रेशमी रज्जु का झूला पड़ा हुआ है जिस पर वत्स भट्ट बैठा धीरे-धीरे झकोले लेता हुआ गीत की पंक्ति गुनगुना रहा है।]

वत्स—स्वर्ण-सा है तन तुम्हारा,
स्वर्ण-सा है मन तुम्हारा।

[विष्णुवर्धन का प्रवेश। विष्णुवर्धन के वस्त्राभरण वत्स भट्ट के वस्त्राभरण की अपेक्षा अधिक मूल्यवान हैं। उसकी कमर में तलवार, स्कन्ध पर धनुष, पृष्ठ पर तूणीर और हाथ में हँसिया है।]

विष्णुवर्धन—कल्पना के आकाश में कंचन-तन के दर्शन करने के अतिरिक्त कुछ और भी कार्य है कविवर जी।

वत्स—तृषित नेत्रों की तृष्णा रूप-दर्शन से ही शान्त होती है, विष्णुवर्धन।

विष्णु—किन्तु रूप के चरणों को वास्तविकता की भूमि पर भी तो पड़ना चाहिए।

वत्स—पड़ना चाहिए। यौवन पुकार-पुकारकर कहता है पड़ना चाहिए किन्तु तुम्हारे समान निष्ठुर स्वार्थी रूप यौवन और प्रीति का त्रिवेणी-संगम होने कब देते हैं। इस कारण कवि के चिर-तृषित प्राण कल्पना के आकाश में रूप-दर्शन करते हैं।

द्वितीय दृश्य

[स्थान—विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) के भवन का अन्तःपुर । सुसज्जित कक्ष में मंदाकिनी गीता का पाठ कर रही है । उसके सामने एक थाल में पूजा की सामग्री रखी है जिसमें कनेर के पुष्प और बेलपत्र स्पष्ट रूप से दृष्टि-गोचर हो रहे हैं ।]

मंदाकिनी—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥

[पार्वती का प्रवेश । वह अभी स्नान करके आई है । दुग्ध के समान धवल साड़ी और लाल कमल के समान लाल चोली के अतिरिक्त और कोई वस्त्र शरीर पर नहीं है । बाल आधे श्वेत और आधे काले हैं मानो दिन-रात का संगम हो । उनके हाथ में स्वर्ण-कलश है ।]

पार्वती—अरी मंदाकिनी, तू तो यहाँ गीता-पाठ में यह भी भूल गई कि मंदिर जाना है ।

मंदाकिनी—माँ, आज मन के आकाश में उदासी और निराशा की घटाएँ न जाने कहाँ से घुमड़कर आ रही हैं, उन्हें ही विच्छिन्न करने के लिए पवन से भी प्रबल गीता के वचनों को अंतःकरण में संचारित कर रही हूँ । [पूजा का थाल लेकर उठती है]

पार्वती—गीता! वास्तव में यह घोर निराशा के अन्धकार का नाश करने वाला आशा-प्रदीप है, किन्तु क्या भारत—भगवान कृष्ण की प्रतिमा पर पुष्प चढ़ाने वाला भारत—गीता को धर्म-पुस्तक मानकर उसका पाठ करने वाला भारत—इस ज्ञान के प्रकाश में अपने जीवन को चला रहा है? धर्म-भीरु भारत श्रद्धाहीन, विश्वासविहीन हृदय से केवल रूढ़ि-पालन-रूप पूजा-पाठ करता है। वास्तविक देवता को भूलकर केवल प्रस्तर-प्रतिमा के चरणों पर मस्तक पटक रहा है।

मंदाकिनी—ऐसा क्यों समझती हो माँ! भारत आज भी मूर्ति के अंतर में सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त चैतन्य को देख रहा है। इन धर्म-पुस्तकों के काली मसि से लिखित अक्षरों में महाज्योति की किरण वह आज भी देखता है। गीता से आज भी आत्मा की अमरता का विश्वास पाकर अन्याय और अत्याचार से संग्राम करने को वह प्रस्तुत है।

[विष्णुवर्धन और दत्त का प्रवेश और पार्वती के चरण-स्पर्श करना।]

पार्वती—शब्द और ध्वनि के समान मित्रता के प्रगाढ़ सम्बन्ध में बँधे हुए दोनों सदा अपने पराक्रम से विनाशकारी शक्तियों का नाश करो, यही मेरा आशीर्वाद है।

दत्त—आपके आशीर्वाद का सम्बल हमें कर्तव्य-पथ पर आगे ही बढ़ा देगा, इसमें हमें सन्देह नहीं।

पार्वती—विष्णु, तू क्यों पगलों की भाँति निस्तब्ध खड़ा है?

विष्णु—माँ!

[विष्णुवर्धन पार्वती के पैरों पर सिर रख देता है। उसकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं।]

पार्वती—क्या हुआ बेटा!

मंदाकिनी—दुःख क्या है भैया!

[विष्णुवर्धन चुप रहता है। उसकी आँखों के अश्रु रुकते नहीं है। पार्वती जल-कलश मदाकिनी को देकर विष्णुवर्धन के अश्रु आँचल से पोंछती है।]

मदाकिनी—सूर्य को किसी ने अश्रु-पात करते नही देखा।

पार्वती—मालव-पुत्र की आँखो में मालव-जननी जल नही ज्वाला देखना चाहती है।

वत्स—माँ, मालव पर्वत के समान अडिग है किन्तु पितृ-वियोग भी उनके नयनो में जल का एक कण भी न ला सके ऐसे हृदयहीन तो वे नही हैं।

पार्वती—(ऊपर दृष्टि करके) तो तुम कर्तव्य की वलिवेदी पर चढ गए! आकाश में एक नक्षत्र की वृद्धि हो गई है।

[पार्वती की आँखों से अश्रु नहीं वहते, अपितु अपूर्व ज्योति चमकती है। मदाकिनी के हाथ से पूजा का थाल और कलश छूट जाता है।]

मदाकिनी—तुम कहते क्या हो, वत्स!

वत्स—मै ठीक कहता हूँ, मदाकिनी, हूणो के सैन्य-दल का सहार करता हुआ मालव-सिंह शत्रु के शवो की सीढी वनाकर स्वर्ग चला गया।

मदाकिनी—ये वर्वर विदेशी हूण, यह निर्दय दैत्य-दल, क्या आँधी की भाँति भारत के सौभाग्य-श्री को लटता हुआ वढता ही जायगा। क्या इनका मद-मर्दन करने वाला एक भी वीर भारत में नही है!

विष्णु—है क्यो नहीं, वहिन! मै माँ की ज्वाला-मुखी-सी प्रज्वलित आँखो की शपथ लेकर कहता हूँ कि इन वर्वर विदेशियो के आतक से भारतभूमि की रक्षा करूँगा।

पार्वती—रक्षा करोगे और अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लोगे।

विष्णु—हां, मां, मेरे प्राणों का संकल्प है कि मैं पिताजी की मृत्यु का प्रतिशोध लेकर ही शांत नहीं हो जाऊँगा, बल्कि भारत मां के वक्ष-स्थल पर अपने अपावन और कठोर पांव रखने की उद्दण्डता करने वाले मदांध विदेशियों से भारतभूमि को मुक्त करूँगा !

पार्वती—जो मालव-जननी पति के वीर-गति पाने पर भी शोक नहीं करेगी। मृत्यु के नृशंस कर पति से सहचरी को पृथक् नहीं कर सकेंगे। मंदाकिनी, मेरी मांग में ऊषा की मुसकान से भी अधिक लाल कुंकुम भर।

मंदाकिनी—बेटी मां की मांग में सिंदूर भरे !

पार्वती—हां बेटी, जिस तरह बेटी को मां ससुरालय भेजती है उसी तरह आज तू मुझे सोलह शृङ्गारों से सजाकर अग्नि-रथ पर बिठा-कर विदा देगी।

विष्णु—धरा के समान धैर्य-शालिनी मां तुम भी विचलित हो उठी हो !

पार्वती—नहीं बेटा, मालव-मां, मालव-कन्या, मालव-पत्नी धर्म-पथ से विचलित नहीं होती। मैं ज्वाला के रथ पर आरूढ़ होकर पति का अनुगमन करूँगी।

वत्स—यही तो भय हमें था कि मां हमें अकेला छोड़कर सती होना चाहती।

पार्वती—अकेला छोड़कर ? क्या मेरी सन्तान को आज भी मां की अंगुली पकड़कर चलने की आवश्यकता है ?

विष्णु—मां के बिना बेटा अपने प्रण का पालन कैसे करेगा ?

पार्वती—तुम्हारी मां वायु में व्याप्त होकर प्रत्येक पग पर तुम्हें आशी-र्वाद देगी, तुम्हारे संकल्पों को दृढ़ प्रदान करेगी।

विष्णु—किन्तु मानव की [illegible] एक [illegible] की अपेक्षा करती है।

पार्वती—भारतभूमि की नारी से [illegible] विष्णु !

उसकी मान और लाज की रक्षा तुम कर सकोगे तो तुम्हारी जननी को स्वर्ग में शान्ति मिलेगी।

विष्णु—नारी जाति की लाज एक आपका विष्णु ही नही प्रत्येक भारतीय करेगा। इसी भारत मे एक द्रोपदी के अपमान ने अठारह अक्षौहिणी सेना का रक्त पिया था।

[सहसा सुहासिनी का प्रवेश। सुहासिनी सोलह-सत्रह वर्ष की युवती है। उसके शरीर पर बहुमूल्य वस्त्राभूषण है किन्तु बहुत अस्त-व्यस्त स्थिति में है। उसके बाल बिखरे हुए है, हाथ में छुरी है।]

सुहासिनी—मिथ्या, सर्वथा मिथ्या, यह वह भारत नही है जहाँ एक नारी के अपमान का प्रतिशोध अठारह अक्षौहिणी सेना का रक्तपान करने पर भी पूर्ण नही हुआ था।

पार्वती—तुम कौन हो, पुत्री ?

सुहासिनी—मै एक प्रताड़ित मालव-कन्या हूँ।

मदाकिनी—तुम किस कुल की कीर्ति हो ?

सुहासिनी—मेरे कुल के कीर्तिचन्द्र को ग्रहण लग गया है। कलक के समुद्र में डूब गया है उसका इतिहास। आज तो मै एक निराश्रित और प्रपीड़ित मालवकुमारी हूँ जो अपनी मान-रक्षा के लिए दशपुर के विषयपति के भवन में शरणार्थिनी के रूप में आई हूँ। मिलेगी शरण इसे ?

विष्णु—मालव-कन्या होकर भी मालव-कुल के स्वाभाविक स्नेह पर शका करती हो ? मालव तो शरण में आने पर शत्रु की भी रक्षा करता है।

सुहासिनी—किन्तु मै एक मालव-कुल के विनाश की कामना लेकर आई हूँ।

[illegible]—किस मालव-कुल की ?

सुहासिनी—अपने ही कुल की।

पार्वती—अपने ही कुल की ?

सुहासिनी—हाँ, क्योंकि वह देशद्रोही है, शत्रु का सहायक है। जो अपने कुल की कन्या के सतीत्व का भी व्यापार करने लगे उसके सर्वनाश की आकांक्षा करना क्या पाप है, माँ! मुझे धर्म और देश प्रिय हैं।

पार्वती—तो बेटी, धर्म और देश पर बलि होने को उत्सुक हृदय को आश्रय देना इस घर का कर्त्तव्य है। विष्णु, परलोक के सोपान पर पाँव रखने के पूर्व तुम्हारी माँ तुम्हें यह उपहार देती है। इसके व्यक्तित्व में भारत के नारीत्व को देखना। प्राण देकर भी इसके मान की रक्षा करना।

[सुहासिनी पार्वती के चरण-स्पर्श करती है। पार्वती उसे उठाकर उसके मस्तक पर हाथ रखती है।]

पार्वती—बेटी, अपने कोमल हाथों से छुरी को फेंक दो। मेरे पुत्र के हाथों में मालव-कन्याओं की लाज रखने के लिए पर्याप्त बल है। तुम जैसी [illegible] भी [illegible] कन्यायें भारत के [illegible] की ओर कातर नयनों से देख रही हैं। देश के युवक [illegible] को [illegible] देकर उन्हें आश्रय दें और उनकी रक्षा करने आगे नहीं बढ़ेंगे तो [illegible] की [illegible] भारत की संस्कृति [illegible] [illegible] हो जायगी। (सुहासिनी से) आज तुम्हारे परिवार में माँ [illegible] नहीं है किन्तु [illegible] और भारत की [illegible] [illegible] देख रही है—इसका आदर करना, बेटी!

सुहासिनी—[illegible] माँ ?

पार्वती—[illegible], [illegible] से, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मेरे स्वामी [illegible] गये हैं। [illegible] दोनों [illegible] [illegible] [illegible] करो।

[illegible]

पार्वती—हाँ, हाँ, शिव-मंदिर भी चलूंगी । आज अन्तिम वार इन पार्थिव हाथो से शकर की मूर्ति पर वेलपत्र चढाते हुए कामना करूँगी कि महादानी भोले विश्वनाथ मेरी सन्तान को वही तेज और वल प्रदान करें जो उन्होने पार्वती-पुत्र कार्तिकेय के प्राणो में भरा था । जिस प्रकार कार्तिकेय देवताओ के सेनापति वनकर तारक राक्षस और दैत्यदल का सहार करने में सफल हुए, उसी भाँति मेरा विष्णु भी हूणो का नाश करने में सफल हो । (विष्णुवर्धन से) जाओ वेटा, तुम चदन की चिता तैयार करो ।

विष्णु—माँ !

पार्वती—नही वेटा यहाँ तर्क अथवा स्नेह का आग्रह नही चलेगा । गीता में कहा है—"आत्मा अमर है ।" तुम्हारी माँ मरेगी नही । वेटा, हम मृत्यु से भयभीत होने लगे तभी तो हमारी वेटियाँ वर्वर विदेशियो के हाथो लाज लुटाने लगी । क्या वे मर नही सकती ? किसलिए वे कलकित जीवन का वोझ उठाए फिरती है ?

सुहासिनी—धन्य है आपके ये अमृतमय वचन । मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप जीवित रहकर अपनी वाणी से भारत की नारी जाति का नेतृत्व करें ।

पार्वती—मानव की वाणी की अपेक्षा उसका कर्म अधिक अच्छा नेतृत्व कर सकता है । मुझे जाना ही पडेगा । अव विलम्व असह्य है ।

[पार्वती का प्रस्थान । पीछे-पीछे सभी जाते हैं ।]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—वन-पथ । समय—मध्यान्ह । जयदेव और उनकी पत्नी उमा पथ पर चले जा रहे हैं । जयदेव हाथ में नंगी तलवार लिये हुए है । दोनों के वस्त्र और शरीर धूल-धूसरित हो रहे हैं । जान पड़ता है, बड़ी दूर से अविरत मार्ग चलते आ रहे हैं । उमा अत्यन्त श्रान्त-क्लान्त है । उसके कटि-प्रदेश में भी एक कटार बँधी हुई है । प्रयत्न करने पर भी उमा से आगे चला नहीं जाता और वह दीर्घ निश्वास छोड़कर एक वृक्ष की छाया में बैठ जाती है । जयदेव को भी रुकना पड़ता है ।]

जयदेव—बहुत थक गई ?

उमा—तो क्या मेरे पाँव यन्त्र हैं जो बिना विश्राम चलते ही जाएँ, और फिर यन्त्र भी तो विश्राम चाहता है ।

जयदेव—विश्राम का अर्थ पूर्ण विनाश होगा ।

उमा—इतना भी क्या विश्वास कि आगे बढ़ने का अर्थ भी पूर्ण विनाश नहीं होगा ।

जयदेव—यह तो ठीक है कि जीवन की [illegible] मनुष्य के हृदय में [illegible] होती है—किन्तु [illegible] [illegible] ही [illegible] होता [illegible] [illegible] प्राप्त [illegible] है ।

उमा—यदि [illegible] के उस पार [illegible] है तो तुम मुझे [illegible] [illegible] क्या चाहते हो ?

जयदेव—[illegible] [illegible] से [illegible] । [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अभिभावक बनकर रहता है। उठो, प्रिये, हमें चलना ही पड़ेगा।

[उमा शिशु का मुंह चूमती है, उसकी आंखों में आंसू छलछला आते हैं]

जयदेव—ये आंसू वर्तमान की ज्योति छीन लेंगे और यदि वर्तमान ही पथ भूल जायगा तो भविष्य को कहाँ ठिकाना मिलेगा। हूण गुप्तचर हमारी टोह में है, उनकी आँखें हम पर पड़ें इसके पहले ही हमें निरापद स्थान पर पहुँच जाना चाहिए।

[इसी समय शस्त्रास्त्र-सज्जित चार हूण सैनिकों का प्रवेश।]

एक हूण सैनिक—हम तुम्हें निरापद स्थान में पहुँचा देंगे (साथी सैनिकों से) बांध लो इन्हें।

[हूण सैनिक जयदेव और उमा को पकड़ने को अग्रसर होते हैं। उमा विद्युत-गति से ओढ़नी को झूला-सा बनाकर उसमें शिशु को रखकर पीठ पर कसकर बांध लेती है और हाथ में कटार लेती है। जयदेव तलवार खींचकर सावधान हो जाता है।]

जयदेव—जब तक भारतीय युवक के हाथ में असि है तब तक बर्बर हूण तो क्या यमदूत भी उसे बन्दी बनाने का दुस्साहस नहीं कर सकते। सावधान! आगे बढ़कर असमय अपनी मृत्यु को आमन्त्रित मत करो।

दूसरा हूण—एक मूर्ख भारतीय श्वान चार-चार हूण सिंहों को चुनौती देता है।

पहला हूण—तेरी जन्दों भी तो क्या है तुझे इस सुख-वैभव और विलास से परिपूर्ण संसार से प्रस्थान करने की। मेरा कहना मान इस सुन्दरी को प्रसन्न मन से हमें दे डाल और प्राण-दान के साथ

द्रव्य-दान भी ग्रहण कर ।

[जयदेव उत्तर नहीं देता और तलवार से आक्रमण करता है । चारों हूण सैनिक उस पर आक्रमण करते हैं । हूण सैनिक विशालकाय होने पर भी जयदेव की स्फूर्ति और असि-सचालन के कौशल में उसे पराजित नहीं कर पाते । उमा प्रशंसा भरे नेत्रों से जयदेव के रण-कौशल का निरीक्षण कर रही है । उसी समय ७-८ हूण सैनिकों के संरक्षण में एक शिविका आती है । एक हूण सैनिक के हाथ में हूण पताका है । शिविका में बैठी हुई कंचनी पट उठाकर देखती है ।]

कंचनी—ठहरो !

[शिविका भी रुकती है और तलवारें भी । कंचनी शिविका में से उतरकर आती है]

कंचनी—क्या हूणों को इसी वीरता पर अभिमान है ?

एक हूण—देवि, प्रीत और रण-नीति में कोई कार्य वर्जित नहीं है ।

दूसरा हूण—आप अपने [illegible] स्थान को [illegible] और हमें [illegible] करने दीजिए ।

कंचनी—मुझे इस विचित्र रण-नीति से [illegible] क्योंकि अन्याय का विरोध करना प्रत्येक मानव का [illegible] है । मैं अपनी आंखों के सामने [illegible] और [illegible] का [illegible] नहीं होने दूंगी ।

पहला हूण—हम इस युवती पर [illegible] नहीं [illegible], [illegible] इसे प्रत्येक प्रकार के सुख और ऐश्वर्य की स्वामिनी [illegible] ।

कंचनी—किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] बरबस ......

पहला हूण—(बात काटकर) हाँ बरबस ही। पराजित जाति की नारियो को विजेता सैनिको के मनोरजन का खिलौना बनना ही चाहिए।

कचनी—किस न्याय से ?

पहला हूण—शक्ति के न्याय से, तलवार के न्याय से। हूणो की भुजाओ में बल होगा तो इस निरीह युवती को तो क्या भारत के बडे-बडे भपालो के अन्त पुरो की राजकुमारियों और रानियो को वे अपने चरणो की दासी बनाएँगे।

कचनी—छि ! लज्जा नही आती तुम्हे ऐसे वचन मुँह से निकालते हुए ? आज तक मै हूणो की वीरता का सम्मान करती थी। जिस जाति की विजय-पताका भूमण्डल के अनेक राष्ट्रो में गर्व के साथ फहराई है क्या उसमे शील और नीति नाम के लिए भी नही है ? कैसा भ्रम था मेरा कि मैने सोचा कि आक्रान्ता होते हुए भी हूणो ने मानवता को तिलाजलि नही दी है, यदि ये मनुष्य बनकर भारत मे आते तो भारत की महान् सस्कृति इनके पाद-प्रहारो को विस्मृत कर अपनी उदार, करुणामय और वात्सल्यपूर्ण गोद में इन्हें बिठा लेती और ये भी भारतीय बनकर इस देश के हित को ही अपना हित समझते।

कचनी के साथ आए हुए हूण सैनिको का नेता—देवि, हमें विलम्ब हो रहा है।

कचनी—किन्तु यह डोली अभी आगे नही बढेगी।

वही हूण—देवि, युवराज की आज्ञा की अवहेलना हमारे सामर्थ्य के बाहर है।

कचनी—तो तुम मेरा शव यहाँ से ले जा सकोगे।

वही हूण—देवि, भारतीय नारी को हूण सैनिक एक खिलौने से अधिक महत्त्व नहीं देते, फिर भी आप युवराज की सम्माननीय अतिथि है। इसलिए हम आपका सम्मान रखना चाहते है।

कंचनी—युवराज की सम्माननीय अतिथि की आज्ञा में तुम्हें युवराज की आज्ञा का आभास होना चाहिए।

वही हूण—किन्तु, इस प्रकार की आज्ञा देकर आप स्वयं भी युवराज की कोपभाजन बनेंगी।

जयदेव—देवि, आप हमारे कारण संकट मोल क्यों लेती हैं ? इस तलवार की धार हमारे भाग्य की रेखाएँ रक्त के अक्षरों में अंकित करेगी।

उमा—जो नारी आत्म-गौरव की देहली को उलाँघकर देश के शत्रु की शिविका को सुशोभित करने में आनन्द पाती है उसे परायी पीड़ा से पीड़ित होने की आवश्यकता ही क्या है ?

कंचनी—भद्रे, तुमने मेरे हृदय पर विष से बुझा हुआ तीक्ष्णतम शर संचालित किया है, किन्तु मैं तुम्हारे पैने बाण को प्राणों से सम्हाल कर रखूँगी। मैं नीच हूँ, पतित हूँ, देशद्रोहिणी हूँ किन्तु फिर भी मुझ में इतनी लाज शेष है कि भारत की सती और भद्र महिला के सम्मान की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझूँ।

पहला हूण—आपकी इच्छा क्या है ?

कंचनी—यही कि इन्हें अपने मार्ग पर जाने दिया जाए।

दूसरा हूण सैनिक—अर्थात् आप चाहती हैं कि हूण सैनिक शत्रु पर दया करें।

जयदेव—भारतीय युवक शत्रु की दया पर जीवित रहने की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन करना श्रेयस्कर समझता है। (कंचनी से) आपकी सद्भावना के लिए धन्यवाद देते हुए भी हम [illegible] से दया की भिक्षा नहीं माँगेंगे।

उमा—भारतीय नारी अपने सतीत्व की रक्षा स्वयं करती है। यदि मेरे पति के हाथ पर [illegible] मेरी रक्षा [illegible] तो मेरी [illegible] कटार मेरे प्राणों को स्वर्ग पहुँचाने के लिए [illegible] रहेगी।

चौथा दृश्य

[एरण के रण-स्थल के निकट हूणों का सैनिक शिविर। समय—रात । आकाश में पूर्ण चन्द्र हँस रहा है। चन्द्रिका चांदी की चादर के समान पृथ्वी पर बिछी हुई है । खुले सुविस्तृत समतल क्षेत्र में सुन्दर जाजमों और बहुमूल्य कालीनों की बिछात की गई है। सुन्दर कालीन पर मसद के सहारे हूण युवराज मिहिरकुल विराजमान है । उसके पीछे खड़ी हुई कुछ युवतियां झीने और विरल वस्त्र पहिने हुए पंखा झल रही है । दोनों पार्श्व में मधुबालाएं हाथ में सुरा की सुराहियां और पात्र लिये हुए अपने रूप, यौवन और मधुर मुस्कान से सपूर्ण वातावरण को मादक बना रही है। मिहिरकुल से कुछ दूर धन्यविष्णु (हूणों के आधीन मालवा का माडलिक) बैठा हुआ ह । उसी के पास हूण सेनापति बैठा है । मिहिरकुल के हाथ का मद-पात्र रिक्त हो चुका है। धन्यविष्णु और सेनापति के पात्र भी रिक्त है।]

मिहिरकुल—जीवन एक नशा ही तो है, धन्यविष्णु ! एक नशा, एक तूफान, एक पागलपन हमें सहस्रों कोस से यहां खींच लाया है। वही नशा हमें रक्त की भीषण होली खिला रहा है।

[मिहिरकुल मधुबाला की तरफ देखता है]

मिहिरकुल—पात्र रिक्त न होने दो, मधुबाले !

[मधुबाला मिहिरकुल के पात्र में मदिरा ढालती है]

मिहिरकुल—मालवपति धन्यविष्णु और सेनापति का पात्र भी भर दो। मेरा साथ देने वाले को मेरी ही तरह प्रमत्त होना पड़ेगा।

[मधुबाला धन्यविष्णु और सेनापति के पात्र भी भरती है]

धन्यविष्णु—युवराज की स्नेह-दृष्टि मदिरा से कम स्फूर्तिदायक नहीं है।

सेनापति—युवराज के संकेतों से अधिक उत्तेजक वस्तु संसार में कुछ नहीं है ।

मिहिरकुल—(मदिरा का घूँट पीकर) मिहिरकुल के सामने कविता न करो । मैं कविता के कल्पनालोक में नहीं वास्तविकता की कठोर पृथ्वी पर पाँव रखकर चलता हूँ, और मानता हूँ कि म्लान जीवन और क्लांत मन को नवजीवन, नवीन पुलक, नवीन-स्फूर्ति यौवन-मदमाती मधुबाला की छलकती हुई आँखों की सुरा या उसके आग जैसे उज्ज्वल हाथों से ढाली हुई लोहू-सी लाल मदिरा ही प्रदान करती है । पियो धन्यविष्णु, पियो सेनापति—केवल देखने से तृप्ति नहीं होगी । पियो, मदिरा पीने के लिए है, फूल सूँघने के लिए है और सौन्दर्य भोग के लिए है ।

धन्यविष्णु—(मदिरा का घूँट लेने के पूर्व) युवराज की अमर कीर्ति की कामना करते हुए मैं मदिरा-पान करता हूँ ।

सेनापति—(मदिरा का घूँट लेने के पूर्व) युवराज के चरणों में संसार भर के राजमुकुट लोटें इसकी कामना करते हुए मैं मदिरा-पान करता हूँ ।

[धन्यविष्णु और सेनापति दोनों ही मिहिरकुल का मद्यपान में साथ देते हैं ।]

मिहिरकुल—(धन्यविष्णु से) तुम मेरे सच्चे साथी हो, धन्यविष्णु ! सेनापति से भी अधिक प्रिय हो तुम मुझे । तुम्हारी सहायता से ही मैं गुप्त साम्राज्य की सेना पर विजय पा सका हूँ । परम पराक्रमी गुप्त सम्राट् भानुगुप्त और महाबलाधिकृत गोपराज अपने प्राणों की बलि देकर भी हमारी सेना का वेग नहीं रोक सके ।

धन्यविष्णु—मुझे इस विजय का थोड़ा-सा भी श्रेय देना आपकी कृपा है, किन्तु मैं जानता हूँ कि युवराज के नेतृत्व में [illegible] की बड़ी-से-बड़ी शक्ति को पराजित करने की क्षमता रखती है ।

जिस हूण-सेना की टक्कर से ससार का गर्वोन्मत्त रोम-साम्राज्य भी टिक न सका उससे जरा-जीर्ण और म्रियमाण गुप्त-साम्राज्य कैसे लोहा ले सकता है ?

मिहिरकुल—गुप्त साम्राज्य के विशाल भवन की आधार-शिलाएँ सड गई है यह मै जानता हूँ और यही जानकर मै भारत जैसे विशाल देश पर अधिकार करने का स्वप्न देख सका हूँ। फिर भी मुझे भारत के सैनिको की ही नही सर्वसाधारण की निर्भीकता, साहस और नैतिकता से चकित हो जाना पडा है। यहाँ सुई की नोक के बराबर भूमि पाने के लिए भी सहस्रो मस्तको की बलि चढानी पडती है। वीर जाति को मित्र बनाने में मन गौरव का अनुभव करता है और शत्रु बनाने में भी।

सेनापति—निश्चय ही युवराज, भारतवासी अद्‌भुत साहसी और वीर है। इतिहास इस देश के पराक्रम की परपराओ से परिपूर्ण है। पुरु के पुत्र ने केवल दो हज़ार अश्ववाहिनी लेकर विश्वविजयी अलक्षेन्द्र की अपार सेना से पूरी एक रात युद्ध किया था।

मिहिरकुल—स्वय पुरु ने क्या कम साहस प्रदर्शित किया था ? वह भारत का एक छोटा राजा ही तो था। उसके सम्मुख ससार की श्रेष्ठतम सेना थी तब भी उसने यूनानियो के दाँत खट्टे कर दिए थे।

[नेपथ्य में वीणावादन का मधुर स्वर झकृत होता है। मिहिरकुल मुग्ध होकर सुनता है]

मिहिरकुल—सैनिक शिविर में यह कौन किन्नरी वीणा-वादन से प्राणो में तूफ़ान उठा रही है ?

धन्यविष्णु—यह किन्नरी नही उज्जयिनी की प्रख्यात नर्तकी कचनी है, जो सौंदर्य में उर्वशी और कला की साधना में साक्षात् सरस्वती है।

मिहिरकुल—किन्तु रण-स्थल में उसे कौन लाया ?

धन्यविष्णु—यह प्रबन्ध मैंने किया है। युद्ध के सघर्ष के पश्चात् विश्राम

और मनोरंजन की आवश्यकता होती है । नृत्य स्वरों के सम्मिश्रण से निर्मित राग-रागनियों का प्रयोग तन और मन के घावों को भर देता है । आज्ञा हो तो कलनी को उपस्थित करूँ ?

मिहिरकुल—नर्तकी और पूछ पूछ ! जाओ, तुरन्त जाओ । हमने रणभूमि में भारत की तलवार की धार की प्रखरता देखी है, विश्राम के क्षणों में भारतीय नारियों की मादकता का भी अनुभव किया है और अब हम यहाँ की ललित कलाओं की सरसता भी देखना चाहते हैं ।

पद्मविष्णु—मुझे विश्वास है कि भारत की कला युवराज के हृदय में नया उत्साह भरेगी ।

[पद्मविष्णु का प्रस्थान]

मिहिरकुल—अभागा भारत जहाँ अशोक, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य और समुद्रगुप्त जैसे मानव-रत्न भी अवतरित हुए हैं, वहीं पद्मविष्णु जैसे नर भी [illegible] । [illegible] को भी पाटली-पुत्र के राजसिंहासन पर बैठने की लालसा है ।

सेनापति—भारत की [illegible] सबसे बड़ी निर्बलता है कि यहाँ के विभिन्न नगरों की [illegible] महत्वाकांक्षाएँ [illegible] किसी [illegible] देश की [illegible] नहीं [illegible] देतीं । [illegible] और [illegible] पद्म-विष्णु जैसे [illegible] हो जाते हैं ।

मिहिरकुल—[illegible]

स्वीकार करने वाली वीरात्माएँ न होती तो मुझे इस देश पर विजय पाने में क्या आनंद आता ? श्मशान पर कोई भी अपना रथ चला सकता है, वीरता तो जीवित जाति की चट्टानी छाती पर चढ़कर जाने में है । मैंने चाहा था कि मगध के राजसिंहासन का लोभ देकर गोपराज को अपना अनुचर बना लूं किन्तु उसने उत्तर भेजा कि त्रिलोक के सिंहासन का प्रलोभन भी उसे अपने देश और राज्य से द्रोह करने की इच्छा उसके हृदय में नही जाग्रत कर सकता ।

[धन्यविष्णु, कचनी और वाद्यकारों का प्रवेश]

कचनी—हूण-कुल कीर्तिचद्र, पराक्रम-प्रभाकर युवराज को उज्जयिनी की अकिंचन नर्तकी कचनी प्रणाम करती है ।

[कचनी अभिवादन करती है, उसके साथ ही
वाद्यकार भी अभिवादन करते हैं]

मिहिरकुल—बैठो !

[कचनी और उसके साथी बैठते है]

मिहिरकुल—भीलनी की भाँति दूर बैठकर वीणा बजाकर मेरे मन-मृग को तुम खींच रही थी !

कचनी—किन्तु मृग भीलनी की तान पर मोहित होकर उसकी कुटी में नहीं पहुँचा, बल्कि भीलनी को मृग के पास आना पडा ।

मिहिरकुल—और मृग ने वधिक के आगे स्वेच्छापूर्वक मस्तक झुका दिया है कि वह उसे धड से पृथक् करदे ।

कंचनी—युवराज शस्त्र-संचालन में जितने निपुण है, शब्द-शर छोडने में उससे कम नही है ।

मिहिरकुल—किन्तु उतना नहीं जितनी तुम स्वरो के शर छोडने में । जिन प्राणो को रक्त की अजस्र वर्षा भी शात नही कर सकी उन्हें तुम अपने नूपुरो की ध्वनि और संगीत की स्वर-लहरियों से निहाल कर दो, सुन्दरी । कोई ऐसा राग छेडो, कचनी, कुछ ऐसा

नाच नाचो, नर्तकी, जो मिहिरकुल के प्राणों में बसने वाले काले नाग को आत्म-विभोर कर दे जिससे वह अपनी जहरीली और हिंसक वृत्ति को भूलकर झूम-झूम उठे। कहते हैं भारतीय संगीत रवि-शशि-नक्षत्रों को भी सम्मोहित कर देता है।

कंचनी—संगीत में अपार शक्ति है तभी तो भारत के अमर महागायक मोहन भयंकर काले नाग के फन पर खड़े होकर बाँसुरी बजा सके थे, तभी उनकी मुरली की तान पर व्रजबालाएँ तो क्या धेनुदल भी आनंदविभोर हो उठे थे, किंतु कंचनी तो संगीत की साधना-मंदिर का प्रथम सोपान भी नहीं चढ़ पाई है। संगीत के अगाध सागर से जो दो-चार बिंदु मैंने पाए हैं उनको उपस्थित करती हूँ।

[कंचनी पैरों में घुंघरू बाँधकर खड़ी होती है। वाद्यकार स्वर मिलाकर वादन प्रारम्भ करते हैं। नाचने और गाने को उद्यत होती हुई कंचनी सर्वथा नूतन ही नारी दिखाई देने लगी है। मिहिरकुल तो उसके रूप और यौवन से ही प्रभावित होकर अपलक देखता रह जाता है]

कंचनी—(नृत्य और गान)

रुनुन झुनुन रुन, रुनुन झुनुन रुन,
पग के पायल बोले रे।
उर-अन्तर के रग-रग पर
रति के मादक डोले रे।

अंग अंग में चपल यौवन,
भरता नव [illegible] पागलपन,
नाच रही [illegible] कामना,
लय, लहर, स्वर डोले रे।

रुनुन झुनुन रुन, रुनुन झुनुन रुन
पग के पायल बोले रे।

उर-अंतर के रंग-मंच पर
छवि के पायल बोले रे।

चन्द्रानन पर घूंघट झीना,
दुर्लभ हुआ रूप-रस पीना,
कहते नयन, 'समीरण सत्वर
घूंघट-घन को खोले रे।

रुनुन झुनुन झुन, रुनुन झुनुन झुन,
पग के पायल बोले रे।
उर-अंतर के रंग-मंच पर
छवि के पायल बोले रे।

मधु से भरी, सुरभि से सुरभित,
कली कामना से अनुरंजित,
बोली मधु-लोभी मधुकर से,
'मधु पीले अलि भोले रे।'

रुनुन झुनुन झुन, रुनुन झुनुन झुन,
पग के पायल बोले रे।
उर-अंतर के रंग-मंच पर,
छवि के पायल बोले रे।

[कचनी के स्वर की स्निग्धता और सरसता और अंगों के उद्दीपन पूर्ण विक्षेप मिहिरकुल को प्रमत्त कर देते हैं। वह उठकर कचनी की ओर अग्रसर होता है]

मिहिरकुल—कचनी, तुम्हारे स्वरों के अग्निबाणों ने प्राणों में ज्वाला फूंक दी है। तुम मिहिरकुल की हत्या करने आई हो—मैं तुम्हें अपनी सबल बाहुओं में बांधकर चकनाचूर कर दूंगा।

[कचनी मिहिरकुल के मार्ग से हटकर एक मधुबाला की ओट में खड़ी हो जाती है। इसी

समय किसी हाथी की गगनभेदी चिंघाड़ सुनाई देती है। मिहिरकुल का ध्यान उधर जाता है।]

मिहिरकुल—सुना कचनी, यह भी स्वर है, रव है, भैरव, भयानक। चीत्कार में भी नवीन है।

सेनापति—गुप्त-सेना के जो हाथी पकड़े गए हैं वे ही पार्वत्य पथ से यहाँ लाए जा रहे हैं। उन्हीं में से कोई पर्वत की चोटी पर से नीचे गिरा है। कदाचित् यह उसी का चीत्कार है।

मिहिरकुल—कुल कितने हाथी पकड़े गए हैं?

सेनापति—५०० के लगभग होंगे।

मिहिरकुल—उन्हें गिरि-शिखर पर एकत्रित करो, फिर एक साथ नीचे लुढ़काओ।

धन्यविष्णु—इससे तो उन सबका प्राणान्त हो जाएगा।

मिहिरकुल—हो जाने दो। मैं देखना चाहता हूँ कि इतने बड़े [illegible] गज-समूह की चिंघाड़ मेरे कानों में पर्वतों का विदीर्ण स्वर लाती है कि नहीं। सेनापति, मैं अभी पर्वत की [illegible] से आता हूँ, तुम हाथियों को गिराने का प्रबन्ध करो।

[मिहिरकुल का प्रस्थान। सेनापति भी चला जाता है। कचनी आश्चर्य से स्तम्भित होकर खड़ी रहती है।]

धन्यविष्णु—(कचनी से) [illegible]

कचनी—[illegible]।

[कचनी [illegible]]

[दृश्य-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[समय—प्रभात। स्थान—विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) के भवन के आगे का उपवन। स्फटिकशिला पर आसीन सुहासिनी पुष्प-हार रच रही है। उसके निकट कण्डोली में बेला और गुलाब के फूल रखे हुए हैं। विष्णुवर्धन धीमे पाँवों आकर सुहासिनी के नेत्र मूँद लेता है।]

सुहासिनी—तुम मुझे अंधी बना रहे हो।

विष्णुवर्धन—हाँ, क्योंकि तुम्हारी दृष्टि उपवन के अनेकानेक पुष्पों और गगन के अगणित नक्षत्रों में उलझ जाती है।

सुहासिनी—और तुम चाहते हो कि मैं केवल एक नक्षत्र को अपलक निहारती रहूँ।

विष्णु—क्या किसी नक्षत्र के ऐसे नक्षत्र हैं ?

सुहासिनी—हाँ, है एक देदीप्यमान नक्षत्र के।

विष्णु—दर्शन कराओगी उस भाग्यवान नक्षत्र के मुझे ?

सुहासिनी—दिन के प्रकाश में नक्षत्र नहीं दिखते, उसे देखने के लिए रात्रि का अंधकार चाहिए। जिस तरह तुमने मुझे अंधा कर दिया है उसी तरह तुम भी अंधे हो जाओ, तभी तुम्हें हृदय के आकाश में कोई नक्षत्र दिखाई देगा।

[विष्णुवर्धन सुहासिनी की आँखें मूँदे हुए है लेकिन वह उसके हाथों को हटाने का यत्न नहीं करती और पुष्प-हार बनाने का कार्य भी बन्द नहीं करती।]

विष्णु—आँखें बन्द रहने पर भी तुम माला गूँथ लेती हो।

सुहासिनी—और चाहती हूँ कि आँखें मूँदकर ही अपने देवता के गले में माला पहना भी दूँ।

[एक गुलाब का फूल माला में पिरोते हुए सुहासिनी की अँगुली में सूचिका चुभ जाती है]

सुहासिनी—हूँ हूँ !

[विष्णुवर्धन सुहासिनी का हाथ अपने हाथ में ग्रहण करके उसकी अँगुली से निकलता हुआ रक्त अपने मुँह से चूस लेता है।]

सुहासिनी—मेरा रक्त मधुर लगा तुम्हें ?

विष्णु—तुम सजीव माधुर्य हो, सुहासिनी ?

सुहासिनी—तो तुम मेरे शरीर का सम्पूर्ण रक्त पीओ, मेरे मांस को खाओ, मेरी हड्डियों को चूर्ण करके फाँक जाओ।

विष्णु—मुझे हाड़-मांस का मोह नहीं है।

सुहासिनी—तो तुमने मेरा रक्तपान क्यों किया ?

विष्णु—तुम्हारा कष्ट दूर करने के लिए ?

सुहासिनी—कष्ट देकर कष्ट दूर करने का प्रयत्न आग लगाकर पानी के लिए दौड़ने के समान है।

विष्णु—कष्ट तो सूचिका ने दिया है जिसने तुम्हारी-सी सुकुमार अँगुली को वेध दिया है।

सुहासिनी—किन्तु जो हृदय को वेध देते हैं वे क्या कुछ भी कष्ट नहीं देते ?

विष्णु—ऐसा कष्ट तो बड़े भाग्य से मिलता है।

सुहासिनी—तो बताओ तुम्हें भी ऐसी भाग्यवान् करूँ। निकालो खड्ग, काटो मेरे सम्पूर्ण [illegible] में [illegible]। [illegible] मेरे प्राणों में [illegible]।

विष्णु—[illegible] ? [illegible] और तुम [illegible] हृदय को [illegible]। क्या तुम्हारे हृदय का [illegible] करने की [illegible] हुई है ?

सुहासिनी—हृदय पर आघात करने में कुछ भी पराक्रम नही है, मालव-वीर !

विष्णु—तब पराक्रम किस कार्य में है ?

सुहासिनी—पराक्रम का कार्य है हृदय पर राज्य करना । हूणो ने आर्यो के मस्तक काटे, हृदय वेघे, नगरो को जलाया, राज-मुकुटो को भूलुण्ठित किया, किन्तु जन-मन पर राज वे नही जमा सके ।

[इस बीच सुहासिनी माला पूरी कर चुकती है]

विष्णु—यही तो हमारे देश के अधकारपूर्ण भाग्याकाश में एकमात्र आशा की किरण है । आज हम असगठित और विभाजित है, किन्तु शत्रु का अत्याचार ही हमें एकता के सूत्र में वँधेगा । जिस प्रकार तुम्हारी सूचिका ने निर्दयता-पूर्वक सुमनो के हृदय वेधकर उन्हे एक माला में गूँथ दिया है, उसी तरह हूणो के अमानुपिक अत्याचारो की पैनी नोंक जनता के हृदयो को एक सूत्र में पिरो देगी ।

सुहासिनी—और एक साथ सपूर्ण भारत का मनोवल शत्रु के आतक को चुनौती देगा और उसका नेतृत्व करेंगे मालववीर विष्णुवर्धन और तव सुहासिनी विजयश्री प्राप्त करने वाले यशस्वी जन-नायक को जयमाला पहनाएगी ।

[सुहासिनी विष्णुवर्धन के गले में माला पहना देती है ।]

विष्णु—यह क्या किया तुमने ?

सुहासिनी—तुमने पाणि-ग्रहण किया और मैंने वरमाला पहनाई ।

विष्णु—किन्तु प्राण-प्रिय अतिथि ! इस समय हमारा देश एक विशाल श्मशान वना हुआ है । क्या हमें श्मशान पर शहनाई वजाने का अधिकार है ?

सुहासिनी—तो तुम वरमाला को तोड़कर पृथ्वी की पखुड़ी-पखुड़ी कुचल डालो। हृदय ने अपना धर्म पाला है, मस्तिष्क अपना धर्म पाल सकता है।

विष्णु—सुहासिनी, क्या तुम नहीं जानती कि सैनिक जीवन आँधी में जलने वाला दीपक है, वायु का कोई झोंका उसे बुझा दे सकता है। नश्वरता के उत्तरीय में तुम अपने भाग्य के आँचल का अधिबंधन मत करो। तुमको तो ज्ञात है कि मैंने महारानी [illegible] माताजी की प्रज्वलित चिता को नमस्कार करके भारत से हूणों की निरंकुश और नृशंस सत्ता को सदा के लिए [illegible] समाप्त करने की शपथ ग्रहण की है। मेरे बाहुओं पर ऐसा भार [illegible] मत डालो कि रणभूमि में उनकी गति मन्द पड़ जाए। मेरे पैरों में स्नेह की जंजीर मत डालो—मुझे मुक्त रहने दो—देश के [illegible] बलिदान होने दो।

सुहासिनी—तो जाओ, अपने हाथ से यह वरमाला मेरे गले में डाल दो।

[विष्णुवर्धन अपने गले से माला उतारकर सुहासिनी को पहनाता है।]

सुहासिनी—कारण कि तुम सम्राट् नही हृदय-सम्राट् हो। जन-नायक के साथ ही मन-नायक भी हो। जनमत तुम्हारे साथ है। तलवार को तलवार काट सकती है किन्तु जन-मत के प्रवाह को न कोई काट सकता है, न कोई रोक सकता है। कोटि-कोटि तोरमाण और मिहिरकुल जनमत के महासमुद्र में विलीन हो जाएँगे, समझे हृदय-सम्राट् !

[वत्स का प्रवेश]

वत्स—क्षमा करना, हृदय-सम्राट् ! बिना आज्ञा पाये ही तुम्हारे राज्य में प्रवेश करने का दुस्साहस मैंने किया है।

सुहासिनी—पराए राज्य की सीमा में प्रवेश करना दुस्साहस नही है, हाँ किसी के राज्य पर अधिकार कर स्वय राजा बनने का दुस्स्वप्न देखना अपराध अवश्य है।

वत्स—राजा बनने का दुस्स्वप्न तो इस कवि ने अपने प्राणो में कभी नही पाला। मै तो अपने राजा के सुविस्तृत साम्राज्य के किसी एक कोने में अपनी अकिंचनता की चटाई बिछाकर बैठ जाना चाहता हूँ—और अपनी हृदय-वीणा के तार झकृत करना चाहता हूँ।

विष्णु—किंतु राजा कवि को राजमत्री बनाना चाहे तो।

वत्स—मेरे राजा की आज्ञा तो मुझे माननी ही पडेगी।

सुहासिनी—तो आज से विष्णुवर्धन हुए चन्द्रगुप्त और महाकवि वत्स हुए चाणक्य।

विष्णु—सुहासिनी, मनुष्य को मनोरथ के अश्वो की रास अपने हाथ में रखनी चाहिए, और अपने लक्ष्य का भी ज्ञान होना चाहिए।

सुहासिनी—अवश्य ही, लेकिन मनुष्य को मनोरथ के अश्वो के पाँवो में साँकल भी नही बाँधनी चाहिए। चन्द्रगुप्त मौर्य साधारण सैनिक ही तो था किन्तु उसके प्राणों में आकाक्षा की आग जल रही थी, उसे चाणक्य रूपी पवन का सहयोग मिला तो नृशस नद-साम्राज्य सूखे हुए खेत की तरह जलकर भस्म हो गया। क्या आज उसी की

पुनरावृत्ति नही होगी ।

वत्स—अवश्य होगी, यही आज कोटि-कोटि प्रपीड़ित प्राणो की पुकार है किंतु चन्द्रगुप्त और नद का युद्ध दो भारतीयो का गृहयुद्ध था । इसके विपरीत आज हमें उस बर्बर विदेशी सत्ता से सग्राम करना है जिससे संसार की कोई शक्ति भिड़ने का साहस नही कर सकी है । सबसे अधिक दुर्भाग्य की बात यह है कि धन्यविष्णु जैसे स्वार्थ-साधक, नीच और कापुरुष निजी जीवन के सुख-विलास-वैभव की रक्षा के हेतु विदेशी सत्ता के रक्षा-कवच बने हुए है । हमें परायो से पहले अपनो से लडना है ।

विष्णुवर्धन—किन्तु हमारा मुक्ति-संग्राम भूपालो के सहयोग पर अवलवित नहीं होगा । निस्सन्देह, सुहासिनी, भूपालो की वेतन-भोगी सेना हूणो की दुर्धर बर्बरता की आँधी के सामने नही टिक सकेगी । इसका प्रमाण एरण के युद्ध में मिल चुका है । आवश्यकता है जनता में निर्भयता, आत्मविश्वास, समूह बल पर आस्था और देश के प्रति कर्तव्य-भावना को जाग्रत कर प्रत्येक आबाल-वृद्ध नर-नारी को मुक्ति-सेना का सैनिक बनाने की ।

[मंदाकिनी का प्रवेश]

मदाकिनी—और आवश्यकता है इस बात की कि मुक्ति का सग्राम लडने वाले खाना-पीना छोडकर केवल मत्रणा में निरत न रहें ।

विष्णु—सम्पूर्ण भारत की भूख-प्यास की तृप्ति के साधनो की सिद्धि जिनके जीवन का स्वप्न है वे अपनी भूख-प्यास की चिन्ता कैसे कर सकते है ?

वत्स—नही, मदाकिनी, यथार्थ बात यह है कि सुहासिनी के मधुर हास्य ने विष्णुवर्धन की भूख-प्यास को सदा के लिए तृप्त कर दिया है ।

मंदाकिनी—जानती हूँ वत्स, किन्तु मुस्कान और चितवन के पेय से कोई हृदय की भूख-प्यास भले ही बुझाले, किन्तु शरीर को तो

गोमाता के थनों का वरदान फेनोज्वल दुग्ध या भू-माता का वरदान अन्न चाहिए। सैनिक को अपने शरीर की भी तो चिन्ता करनी पडती है। (विष्णुवर्धन से) चलो, भैया, सुहासिनी तो ऐसी मैना है जिसे तुम मुक्त भी कर दोगे तब भी वह पुन लौटकर पिंजरे में आ बैठेगी।

विष्णु—बहन, तुम अतिथि के प्रति अन्याय करती हो।

मदाकिनी—हां, किन्तु इतना नहीं जितना तोरमाण और मिहिरकुल भारत के प्रति कर रहे हैं।

सुहासिनी—अन्याय करने वाले के प्रति विद्रोह होने की भी तो सभा-वना है।

मदाकिनी—मैं यदि निर्दयता भी करूं तब भी तुम मुझसे विद्रोह नही कर पाओगी सुहासिनी, क्योकि म हूण आतककारियो की भांति विदेश से नही आई हूं। मेरी ममता की निममता तो तुम्हे सहनी ही पडेगी। कहो न अपने सम्राट् और उनके महामन्त्री से कि अब राजसभा भग कर मेरी भोजनशाला में पदार्पण करें। ये तुम्हारा सकेत पाए विना एक पग भी नही उठायेंगे।

सुहासिनी—क्या भारत-भाग्य-निर्माण का स्वप्न देखने वाले के पग एक शरणार्थिनी के सकेतो पर उठेंगे ?

मदाकिनी—इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? शरणार्थी किसी दिन सम्राट् बन बैठता है। शुभ नक्षत्रो का उदय किसी को भी प्रभुता और प्रभाव के उच्चतम शिखर पर आसीन कर सकता है। मेरी तो यही कामना है कि ऐसा शुभ महूर्त सत्वर आए कि भैया के निरकुश हृदय को कोई मधुर व्यक्तित्व नियन्त्रित करे, किसी का अनुशासन दुस्साहसी मन को विवेक की आंखें दे, और पराक्रम को विचार करने की भी बुद्धि दे। मै जानती हूं हमारे देश का पीडित हृदय भैया में वीर, पराक्रमी, विवेकशील, दृढव्रती और आत्म-विश्वासी जन-नेता को देखता है, किंतु मै समझती हूं कि अपना

जीवन सेवा की बलिवेदी पर अर्पित करने वाले की साँसें भी किसी के स्नेह का सहारा खोजती है जिससे उसे विपरीत परिस्थितियों के आघात सहने का बल प्राप्त हो, असफलताओं के पश्चात् रण-निरत रहने की स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त हो।

वत्स—किन्तु मदाकिनी, मनुष्य-काया को जो स्फूर्ति स्वादिष्ट भोजन से प्राप्त होती है वह किसी अन्य वस्तु से नही।

विष्णु—जान पडता है वत्स के कवि पर इसका ब्राह्मणत्व प्रबल हो गया है। भूखे ब्राह्मण के पेट की ज्वाला शांत करनी ही पड़ेगी। चलो।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[स्थान—कंचनी का शयन-कक्ष। समय—रात्रि। कक्ष की सजावट बहुमूल्यता के साथ सुरुचि तथा सौंदर्य-प्रियता की द्योतक है। दीवार पर ताण्डव की मुद्रा में नटराज शंकर और वीणावादन-रत सरस्वती के चित्र कलाकार की कुशल तूलिका का विज्ञापन कर रहे है। कक्ष में बिछे पर्यंक के चारो पाए हाथीदांत से गढी हुई चार अप्सराओ की मूर्तियों के है। शय्या पर जरीदार किनारी वाली दुग्ध-धवल चादर बिछी हुई है। मखमल के सिरहानों पर भी बहुमूल्य जरी का काम किया हुआ है। पर्यंक के पार्श्व में हाथीदांत की तिपाही पर स्वर्ण-निर्मित सुराही रखी हुई है, पास ही मद-पान करने के मनोरम पात्र रखे है। पर्यंक से आधारित एक वीणा रखी है। कंचनी एक दर्पण के सम्मुख खड़ी होकर अपने अवयवों के सौंदर्य और गठन को निहार रही है।]

कंचनी—कला के रसिक कलाकार की कला के पहिले उसके रूप और यौवन को देखते हैं। और यदि कलाकार अपनी कला से उसे प्रभावित कर सका तो वह उसके रूप-यौवन का रसपान करने के लिये पागल हो उठता है। मै समझती हूँ कि म कला के प्रदर्शन से रसिकों के हृदयो में आनन्द की हिलोरें उठाती हूँ—किन्तु वास्तविकता यह है कि अधिकाश रसिक कला में कम और शरीर के सौष्ठव में ही मन को अधिक उलझा देते है, तब मुझे क्रोध आता है अपने ही सौंदर्य पर।

[कचनी की परिचारिका मालती इन्द्रच्छद माणवक हार लेकर प्रवेश करती है।]

मालती—यह इन्द्रच्छद माणवक हार भी धारण कर लो। (हार कचनी को पहनाकर) आकाश के नक्षत्र भी इस हार से ईर्ष्या करते है कि इसे तो तुम्हारे गले का हार बनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया और वे आकाश में तरसत ही रहते है। तभी तो वे रात भर आँसू वहाकर तुहिन-कणो से पृथ्वी का आँचल भर देते है। विधाता ने तुम्हे गढने में कोई कसर नही छोडी है—तिस पर आभूषण तो तुम्हारे रूप को चार चाँद लगा देते है।

कचनी—किन्तु मालती, मेरी आत्मा मुझसे प्रश्न करती है कि कलाकार कला-रसिको के सम्मुख सज-सजाकर इतने आकर्षक रूप में क्यो उपस्थित हो ? क्यो न यह यवनिका के पीछे बैठकर वीणा की झकार से श्रोताओ के हृदय में आनन्द की तरग उठाए ?

मालती—कलाकार की आँखो से ओझल रहने पर भी, दूरागत वीणा की तान से तरगित होने वाले कला-प्रेमी ससार में है कहाँ ? देवताओ के राजा इन्द्र भी कला की वासना को उत्तेजित करने वाली मदिरा वनाने में नही लजाए, तो मानवो को नारद मुनि वनाने की कल्पना हमें क्यो करनी चाहिए ? विधाता ने तुम्हें कला

भी प्रदान की है और कचन-काया भी तव क्यो दोनो गुणो के जादू से मानव-मन को नचाने में सकोच करती हो ? भूपालो के राजमुकुट भी तुम्हारी चरण-धूलि की कामना करते है, विश्व का वैभव तुम्हारे चरणो पर निछावर होने को तरस रहा है।

कंचनी—किन्तु क्या वैभव का ढेर आत्मा की प्यास बुझा सकता है ?

मालती—शरीर को सुखाकर आत्मा की प्यास बुझाने के प्रयास को मैं तो पागलपन समझती हूँ, देवि ! वैराग्य की बातें तपोवन के महर्षियो को करने दो—नर्तकी के प्रमोद-भवन में वैराग्य की रागिनी कोई नही सुनना चाहता । कला-भवन में रसिको का समुदाय एकत्रित हो गया है। तुम्हारे चिर-परिचित धनी-मानी भद्रजनो के अतिरिक्त अनेक हूण सेनाध्यक्ष और उच्च राज्याधिकारी भी उपस्थित है । उनके श्रवण, नयन और मन की तृष्णा बुझाओ ।

कंचनी—मालती ! आज मेरा मन न जाने किस अज्ञात लोक में उड रहा है । आज वासना के कीच में सने हुए कीटो का मनोरजन मैं नही करूँगी । तुम अभ्यागतो से निवेदन कर दो कि मैं स्वस्थ नही हूँ ।

मालती—उज्जयिनी के भद्रजन तो तुम्हारी उपेक्षा के वाण अनेक वार खा चुके है, प्रत्येक ठोकर उन्हे नवीन उत्साह देती है और वे फिर-फिर लौटकर तुम्हारे चरणो में गिरते है, किन्तु ये विदेशी वर्बर हूण क्या अपमान का वाण सहकर चैन से वैठेंगे ?

कंचनी—जानती हूँ वे चैन से नही वैठेंगे और चैन से तो मै भी नही वैठूंगी—और सच पूछो तो मालती, एरण के रणक्षेत्र में मैंने जो कुछ देखा है उसने मेरे हृदय में हलचल पैदा कर दी है । मिहिर-कुल के ज्वलित ज्वालागिरि-समान व्यक्तित्व से मेरी कला पराजित होकर आई है । मुझे उस रात के अपूर्ण नृत्य को पूर्ण करना है । घुंघरूओ के मधुर स्वर की अपेक्षा पीड़ित प्राणों के चीत्कार से अधिक प्रफुल्लित होने वाले हृदय को चुनौती

मुझे विकल किये हुए है । मै उस पर्वत को पीसकर बालुकणो मे परिवर्तित करना चाहती हूँ ।

[इसी समय कहीं निकट से वीणा-वादन की ध्वनि सुनाई देती है ।]

कचनी—किसी कलाकार की कुशल अँगुलियाँ कचनी को चुनौती दे रही है ।

मालती—निश्चय ही कलाकार का स्वरो पर अद्भुत अधिकार जान पडता है, कितनी सुन्दरता से तार सप्तक के स्वरो से अँगुलियाँ नर्तन करती हुई मन्द्र सप्तक के स्वरो तक आ रही है ।

कचनी—इस स्वर-गगा को अवतरित करने वाले भगीरथ को यहाँ ले आओ ।

मालती—जो आज्ञा ।

[मालती जाने लगती है ।]

कचनी—मयूरी के साथ घुंघरू भेज देना ।

मालती—अच्छा देवि ।

[मालती का प्रस्थान]

कचनी—एक-एक स्वर प्राणो के आँगन मे अनिर्वचनीय आनन्द बरसा रहा है । यह है कला का वास्तविक स्वरूप—रूपहीन, आकारहीन । वायु का पथ प्रस्तर की भित्तियाँ अवरुद्ध कर बैठी है किन्तु स्वरो का झझावात प्रत्येक बाधा को वेध देता है । ऐसा कौनसा स्थान है जहाँ स्वर का पछी उडकर नही पहुँच सकता । स्वर के सूत्र एक हृदय को दूसरे हृदय से सयुक्त कर सकते है । स्वर की मदिरा श्रवण-मार्ग से प्राणो मे उतरकर रक्त मे मिल जाती है जिसका नशा युग-युग तक मन को पागल रखता है ।

[मयूरी का घुंघरू लिये प्रवेश ।]

मयूरी—आज्ञानुसार घुंघरू ले आई हूँ किन्तु··

कचनी—(बात काटकर) पूछना चाहती है कि कला-भवन की सभा

को विसर्जित कर सूने शयनागार में किस अदृश्य अतिथि का अपने नृत्य से सत्कार करना चाहती हूँ ? किसको रिझाना चाहती हूँ ?

मयूरी—रवि-शशि की आभा जिसकी मनुहार करती है उसे किसी को रिझाने की आवश्यकता ही क्या है ?

कचनी—किसी को रिझाने की आवश्यकता नही है। तो क्यो नित्य ही पांवो में घुंघरू बांधकर मे इतने पुरुषो के सामने नृत्य करती हूँ। क्यो उनके हृदय के सुषुप्त वासना-विषधर को जाग्रत करती हूँ ? जिस सर्प से मैं रात-दिन क्रीड़ा करती हूँ क्या वह किसी दिन मुझे नही डस लेगा ? क्या वह कला के प्राणो को ही विषाक्त नही कर देगा ?

[मयूरी से घुंघरू लेकर अपने पैरो में बांधती है। [

मयूरी—मै बांध दूँ ?

कंचनी—नही, आज नही, आज मै स्वय बांधूंगी।

[कचनी घुंघरू बांधकर नाचने लगती है]

मयूरी—जिन अभ्यागतो को आपने चले जाने का आदेश दिया है घुंघरुओ की ध्वनि उनके पैरो की जजीर बन जाएगी और तब उन बन्दियो पर दया कर आपको एकान्त छोडकर कला-भवन में जाना ही पडेगा।

[कंचनी मयूरी की बात सुनकर नाचना बन्द कर देती है]

कंचनी—सच कहती हो, मयूरी ! मेरे प्राणो के ज्वार को नृत्य के तोडो में तरगित होने से मुझे रोकना ही पडेगा। अनचाहे अभ्यागतो को कला-भवन से विदा करने के लिए मौन में हृदय के संगीत को विसर्जित कर देना होगा। मेरे जीवन के चारो तरफ शून्यता छा जाए, अमावस्या की काली रात में काली घटाएँ घिर

कर तारो की आँखें भी मूंद लें—तब एक बिजली-सी चमके और जलते हुए बाण की तरह मेरे प्राणो मे समा जाए।

मयूरी—देवि, जान पडता है आज कुछ अधिक

कंचनी—(बात काटकर) कुछ अधिक पी ली है—लेकिन कहाँ आज तो मैने मदिरा को छुआ भी नही है। हाँ, सगीत-सुरा का एक घूंट अवश्य पिया है। जिस तान को सुनने के लिए मै युग-युग से तरस रही थी आज किसी ने उसके दो बोल सुना दिए है। अब कचनी मे भट्टी मे बनी हुई द्राक्ष-सुरा पीने की सुधि नही है। ऐसा जान पडता है कोई मुझे बादलों के रथ पर चढाकर लिये जा रहा है—तुम लोगो के देखते-देखते मेरा अपहरण कर रहा है।

[मालती के साथ ब्रह्मचारी के वेश में वत्स का प्रवेश। कचनी मयूरी और मालती को जाने का सकेत करती है।]

कचनी—युवक, तुमने मेरे एकान्त अन्त पुर में बरबस प्रवेश किया है।

वत्स—नर्तकी, तुमने ही तो मुझे बुलाया है और मुझ पर बरबस घुस आने का आरोप भी लगा रही हो।

कंचनी—मेरा आरोप मिथ्या नही है युवक! तुम यहाँ आने के पहले ही आ चुके हो। और जब तुम आए तब मेरा आमन्त्रण तुम्हें नही पहुँचा था।

वत्स—यदि मै आने के पहले ही आ गया हूँ तो कदाचित् आकर भी मै नही आया हूँ—और मैने आमन्त्रण पाकर भी नही पाया है, तुमने मुझ पर आरोप लगाकर भी नही लगाया है और मै तुम्हारे सामने होकर भी नही हूँ और अब मुझे यहाँ की प्रत्येक वस्तु को टटोलकर देखना पडेगा कि जो कुछ मै देख रहा हूँ वह है या नही?

कचनी—तब सबसे पहिले मुझे ही टटोलकर देखो युवक! मेरे हाड-मास-चर्म और रक्त को किसी ने चन्द्र समझा, किसी ने कमल,

और किसी ने गुलाब, किन्तु वास्तव में मै क्या हूँ यह तुम्ही बता सकोगे ।

वत्स—नारी का अध्ययन करने का अवसर ब्रह्मचारी ने पाया ही कहाँ है जो बता सकूँ कि तुम क्या हो ।

कंचनी—तो पुस्तक की भाँति नारी तुम्हारे सामने रखी हुई है, उसका प्रत्येक पन्ना खोल-खोलकर तुम पढ सकते हो ।

वत्स—नारी-हृदय के अक्षर पढने की विद्या सिखाने वाला गुरु मुझे नही मिला है ।

कंचनी—और वीणा पर मन को मथ डालने वाला राग छेडना तुम्हें किस गुरु ने सिखाया है ?

वत्स—राजा भर्तृहरि ने ।

कंचनी—उन्हें तो हुए लगभग ६०० वर्ष हो गये है ।

वत्स—उनकी जन्म-तिथि को ६०० वर्ष हुए होगे—किन्तु उनकी मरण-तिथि कदाचित् ६०० कल्प के पश्चात् भी न आये ।

कंचनी—लोग कहते है उन्होने अमृत-फल खाया था ।

वत्स—साहित्य और कला ही अमृत-फल है । साहित्य-सृष्टा और कलाकार मरता नही । काल भी उसे मार नही सकता ।

कंचनी—मुझे अपने गुरु की शिष्या बना दो न !

वत्स—राजर्षि नारी से डरते है ।

कंचनी—डरते है या घृणा करते है ?

वत्स—घृणा चाहे न करें, लेकिन अविश्वास अवश्य करते है ।

कंचनी—तो उनका शिष्य पाप-मूल नर्तकी के अंतःपुर मे कैसे आ सका है ?

वत्स—यौवन अन्धा और दुस्साहसी होता है ।

कंचनी—दुस्साहसी होता है तो बैठ जाओ उस पर्यंक पर जो कहने को वेश्या का है, लेकिन राजर्षि भर्तृहरि की रानी के पर्यंक से अधिक पवित्र है ।

वत्स—ब्रह्मचारी के पास कचन नही है।

कचनी—यौवन का निरावरण और निराभरण नग्न सौंदर्य कचन से अधिक चमकदार है।

वत्स—किन्तु नारी-शरीर वस्त्राभूषणो से सुसज्जित है।

कचनी—(शरीर के गहने उतारकर फेंकते हुए) तुम चाहते हो तो मै शरीर के ऊपर लदा भार उतार दूंगी।

वत्स—और शरीर को भी ?

कचनी—हाँ, शरीर को भी।

वत्स—तो ब्रह्मचारी वेश्या के पर्यंक पर बैठेगा।

[वत्स पर्यंक पर बैठता है]

कंचनी—(सारे आभूषण उतारने के बाद) अब वस्त्र भी फेंक दूं ?

वत्स—चन्द्र पर झीने बादल रहने दो।

[कचनी वत्स के पास ही आ बैठती है—लेकिन वत्स उठकर खडा हो जाता है।]

कचनी—खूब, दूर बैठकर मुझे रिझाने के लिए वीणा बजा रहे थे और

वत्स—(बात काटकर) मै तो स्वात सुखाय वीणा के तार छेड रहा था।

कचनी—स्वात सुखाय ही वीणा बजानी थी तो वन-खड में जाते। कचनी के भवन के पास जो मादक स्वरो को छेडता है वह तो निश्चय ही कचनी के मन को जीतने का प्रयास करता है। सभी कचनी का मन जीतना चाहते है—धनी धन से, भूपति प्रभुता से, और कलाकार कला से।

वत्स—किन्तु कचनी अजेय है।

कचनी—कचनी अजेय होती तो क्या एक अपरिचित ब्रह्मचारी को अपने कक्ष में बुलाती ?

[कचनी वत्स का हाथ पकडकर उसे फिर

पर्यंक पर बैठा देती है।]

कंचनी—भागो मत ! मेरा शरीर अग्नि-पिण्ड नही है और न तुम्हारा शरीर रूई का ढेर है। नारी-शरीर से डरते हो तो लो मै स्वयं उठ जाती हूँ, किन्तु तुम मेरे पाहुने हो । जो मदिरा भूपालो को भी दुर्लभ है उससे तुम्हारा सत्कार करूँगी।

[कंचनी सुराही से मद डालकर वत्स को देती है लेकिन वह नहीं लेता।]

वत्स—मदिरा सुन्दरी से अधिक मादक नही है।

कचनी—कविता छोड़ो ! कसी आर्य को मदिरा अरुचिकर नही हो सकती है।

वत्स—मद-पान को मै पाप नही मानता, सुन्दरी, लेकिन चाणक्य मुझे रोकता है।

कंचनी—तो तुम चाणक्य के भी शिष्य हो ?

वत्स—हाँ, राजनीति में । चाणक्य का आदेश है कि शत्रु की नगरी में विना वलिवैश्वदेव कोई भोज्य या पेय पदार्थ का उपभोग नही करना चाहिए।

कंचनी—राजनीति के नियम प्रीति-मदिर में नही चलते ।

वत्स—ब्रह्मचारी गुरू की आज्ञा मानना अपना कर्त्तव्य समझता है। तुम मुझे मदिरा पिलाना चाहती हो तो अपनी विल्ली को वुलाओ—पहिले वह पियेगी।

कंचनी—तो मैं तुम्हारी विल्ली वन जाती हूँ। लो पहिले मै पीती हूँ। (मद पीते हुए) यदि इसमें यथार्य में विष हुआ तो ?

वत्स—तो तुम्हारे अधरो के स्पर्श से अमृत हो जाएगा !

कंचनी—कारण ?

वत्स—अधरो में अमृत है !

कंचनी—अमृत पियोगे ?

वत्स—पिलाओगी ?

[कचनी अपना जूठा पात्र ही वत्स को देती है, और वत्स उसी से मद-पान करता है ।]

कचनी—कितना अच्छा होता कि सचमुच हाला में हलाहल होता—पीते ही मेरे ओठ जल उठते—मेरी जूठी तुम पीते और तुम्हारे ओठ जल उठते—तुम्हारी जूठी मै पीती और मेरे प्राण जल उठते। मै उन्मत्त होती—तुम भी उन्मत्त होते। तुम वीणा पर तूफानी तान छेडते और मै उन्मत्त होकर नाचती।

वत्स—तो तुम नाचो।

कचनी—क्यो ?

वत्स—क्योकि तुम उन्मत्त हो।

कचनी—तुम वीणा बजाओ।

वत्स—क्यो ?

कचनी—क्योकि तुम उन्मत्त हो।

वत्स—अच्छी बात है तो मै वीणा बजाता हूँ—तुम नाचो।

[वत्स वीणा बजाता है और कचनी नाचती है। दोनों ही अपने तन-मन की सुधि भूलकर अपनी कला की पराकाष्ठा प्रदर्शित करना चाहते हैं। मालती की बाहर से ही आवाज आती है।]

मालती—देवि, महाराज धन्यविष्णु आकर कला-भवन में बैठे है।

[कचनी और वत्स मालती की बात पर ध्यान नहीं देते—लेकिन वह फिर पुकारती है।]

मालती—महाराज धन्यविष्णु आप से इसी समय मिलना चाहते है।

[कचनी का नृत्य रुकता है। वत्स भी वीणा बजाना बन्द कर देता है।]

कचनी—महाराज धन्यविष्णु का मुझे स्वागत करना ही पडेगा। वह राजा है—और कला के प्रदर्शन का व्यापार राजाज्ञा के बिना

किया नही जा सकता। राजा की अवहेलना का अर्थ तुम समझ सकते हो। तुम उस कक्ष में विश्राम करो—मुझे डर है वह कहीं यहीं न चला आये। आओ, म तुम्हारे विश्राम का प्रबन्ध कर दूँ तब राजा की सुधि लूँगी।

[दोनो का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

[स्थान—वन-पार्वत्य प्रदेश में एक गुहा-द्वार। समय—सन्ध्या। विष्णुवर्धन, अभयदत्त, धर्मदास, जयदेव, मंदाकिनी, सुहासिनी और उमा का वार्तालाप करते हुए प्रवेश। सभी स्त्री-पुरुष सैनिक वेश में है।]

विष्णुवर्धन—पिताजी ने गुप्त-साम्राज्य के स्वामिभक्त सैनिक के रूप में कर्त्तव्य-पालन करते हुए एरण के रणक्षेत्र में प्राण न्योछावर कर दिए और माता जी ने आर्य नारी के आदर्शानुसार स्वर्ग में उनका अनुगमन किया। आप स्वीकार करेंगे कि जिन वर्बर हूणो की निर्दयता ने मेरे हृदय पर ये अमर आघात किये है, उनके प्रति मेरे प्राणो में प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की भावनाओ का उन्मत्त हो उठना नितान्त स्वाभाविक है।

जयदेव—हाँ, सर्वथा स्वाभाविक है, और मैंने भी एरण नगरी में हूणों द्वारा धधकाई हुई भयकर ज्वाला में अपने घरवार को भस्म होते हुए देखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे तन-मन-प्राण लपलपाती हुई लपटो से आवेष्टित है। यह ज्वाला तभी शात हो सकेगी जब इन नर-राक्षसो के रक्त से मै भारतभूमि को स्नान कराऊँगा।

धर्मदास—तुम्हारी भाँति ही हूणो के अत्याचार की आँच में भारत के अनेक प्राण आज जल रहे हैं। विष्णुवर्धन और जयदेव के घर की कहानी आज भारत के घर-घर की कहानी है। लाखो हृदय हूणो को अभिशाप देते हुए प्रतिशोध लेने के लिए व्याकुल हैं।

अभयदत्त—और एक हृदय की व्याकुलता उसके अनेक आत्मीय स्वजनो को भी आकुल कर रही है, जैसे कि मै विष्णुवर्धन की वेदना से व्यथित हूँ। विष्णुवर्धन के और मेरे तन में एक ही रक्त प्रवाहित है। विष्णुवर्धन के प्राणो की लपटें मेरे प्राणो में भी ज्वाला प्रज्वलित करती है।

विष्णुर्धवन—इस सहानुभूति के लिए मै आपका आभार मानता हूँ, अभयदत्त जी, किन्तु मैं चाहता हूँ कि हमारी सवेदना और सहानुभूति व्यापक रूप धारण करे। राज्य, प्रदेश, जाति और वशो के प्राचीरो को चीरकर हमारे व्यक्तित्व मुक्त आकाश में पख फैलाएँ, देश के प्रत्येक प्राणी को अपनी आत्मा का अश मानें।

मंदाकिनी—निश्चय ही हमें व्यक्तिगत मानापमान और हानि-लाभ को भूल, सम्पूर्ण राष्ट्र के हिताहित को ध्यान में रखकर एक राष्ट्र-पताका की छत्र-छाया में खडे होकर एकता का गीत गाना होगा। कैलास की ऊँचाई पर गूंजने वाली रागिनी भारतीय महासागर की लहरों में भी सुनाई पडनी चाहिए।

सुहासिनी—अर्थात् भारत के प्रत्येक हृदय की धडकनो का राग एक होना चाहिए। सम्पूर्ण जन-समुदाय के पग एक ही ताल पर उठने चाहिएँ।

जयदेव—एक ही ताल पर उठने चाहिएँ, किन्तु क्या यह साध्य है ?

धर्मदास—आदर्श सदा ही दुस्साध्य होता है। सम्पूर्ण वसुधा को कुटुम्ब समझने की शिक्षा देने वाला आर्य-दृष्टिकोण यदि व्यापक रूप में हमारे व्यावहारिक जीवन में समाविष्ट हो पाता तो क्या आज हम विभाजित और दुर्वल होते ?

सुहासिनी—कैसे आश्चर्य की बात है कि विस्तार, जनसख्या, विभव, सुख-साधन एवं ज्ञान-विज्ञान में ससार के सभी महान् देशो से हमारा देश महत्तम है फिर भी यूनानी, शक और हूण आदि विदेशी जातियाँ इस पर आक्रमण करने का दुस्साहस कर सकी।

विष्णुवर्धन—किन्तु सुहासिनी, विश्व-नियना की सृष्टि में कुछ भी आश्चर्यजनक नही है। अभिशाप और वरदान के वीज मानव स्वय अपने हाथ से वोता है। भारत को प्रकृति से जो वरदान प्राप्त हुए है वे हमारे पूर्वजो के पुरुषार्थ की उपज है, और जो अभिशाप प्राप्त है वे भी हमारी ही त्रुटियो के परिणाम है।

मंदाकिनी—निश्चय ही, यदि भारतीयो ने व्यक्ति के विकास को अत्यधिक महत्त्व न देकर सामूहिक विकास और सम्पन्नता में ही व्यक्ति का हित समझा होता तो क्या कोई विदेशी जाति आक्रमण-कारी के रूप में भारत के सीमात प्रदेश के आगे एक पग भी रख सकती थी ? क्यो न सम्पूर्ण भारत की शक्ति सुदृढ प्राचीर की भाँति सीमान्त पर खडी हो जाती, और उसके दुस्साहस को विफल कर देती।

अभयदत्त—किन्तु आर्य सदा ही विभाजित और सकुचित सीमाओ में बँधे हुए नहीं रहे। इतिहास साक्षी है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य, प्रियदर्शी अशोक, परम भागवत समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और परम भट्टारक स्कन्दगुप्त पराक्रमाक आदि सम्राटो ने राष्ट्रीय एकता के महत्त्व को समझा था, तभी तो उन्होने सम्पूर्ण भारत में एक चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना को आवश्यक माना था। जव-जव भारत एकता के सूत्र में ग्रथित हुआ, तव-तव इसके तेज की चकाचौंध से विश्व की आँखें चौंधिया गई। तव उनकी ओर देखने का साहस किसी को नहीं हुआ और यदि भूल से किसी ने भारत पर आक्रमण करने का दुस्साहस किया भी तो मुँह की खानी पडी।

विष्णुवर्धन—किन्तु सम्राटो द्वारा स्थापित एकता शक्ति को नमस्कार करने वाली विवशता थी—स्वत स्फूर्त आत्मीयता का, एकरसता का उसमें अभाव था। क्या कारण था कि परम भट्टारक स्कन्दगुप्त पराक्रमाक के पश्चात् एक भी गुप्त सम्राट् राज्य-लक्ष्मी को स्थिर न रख सका। ऐश्वर्य की तरगो पर विलास की तरणी में विहार करने वाले सम्राटो के हाथों में खड्ग की मूठ पकडने की क्षमता न रही।

अभयदत्त—और अब ऐसा जान पडता है कि हूण आक्रमणो का अनवरत स्रोत गुप्त साम्राज्य की जडो में प्रविष्ट हो गया है। उसके जोड-जोड हिल उठे हैं। ऐसा जान पडता है कि परम भागवत समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा निर्मित विशाल अट्टालिका गिरकर अपनी ही विशालता में विलीन हो जाएगी।

धर्मदास—अब इसमें सन्देह भी क्या है? धन्यविष्णु के देशद्रोह ने मालव प्रदेश को हूणो के अधिकार में सौंप दिया है। आर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खरपरिक आदि सभी गण-राज्य गुप्त साम्राज्य के जुए को फेंककर स्वतन्त्र हो गए हैं।

मंदाकिनी—गणराज्य स्वतन्त्र हो गए हैं—यह तो अच्छा ही है।

विष्णुवर्धन—गण-राज्यो का स्वतन्त्र होना शुभ है—यदि वे अपने राष्ट्र भारत देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझकर एक दूसरे से प्रतिद्वन्द्विता न कर, राष्ट्र के विकास में एक दूसरे के सहायक बनें।

सुहासिनी—इसका तात्पर्य यह हुआ कि स्वतन्त्र गणतन्त्रो की अपेक्षा भारत का एक निरकुश सम्राट् की छत्र-छाया में रहना हितकर है।

विष्णुवर्धन—यदि सम्राट् अपने आपको प्रजा का पिता अथवा सेवक समझे तो साम्राज्यवाद का बधन भी देश की अनेक टुकडो में

विभाजित करने वाली स्वतन्त्रता से अच्छा है, किन्तु उस स्थिति को हम आदर्श नही कह सकते। हमें तो परम्परागत चलने वाली राजाओ की वशावलियो को समाप्त करके, भारत को एक महान् गणतन्त्र में सगठित करना होगा।

जयदेव—यह एक असभव स्वप्न है। इससे तो अच्छा है कि आप भारत का सम्राट् बनने का स्वप्न देखें और उसे सत्य करने में हम आपका साथ देगे।

विष्णुवर्धन—नही जयदेव, विष्णुवर्धन मालव है और मालव गणराज्य के समर्थक है—समुदाय की, समाज की, देश के कोटि-कोटि मानवों की हित-साधना में व्यक्ति की महत्वाकाक्षाओ को सयत करने के सिद्धान्त को वह मानता है।

सुहासिनी—महत्वाकाक्षा की प्रेरणा मनुष्य को साहस, लगन और दृढता प्रदान करती है, जिन गुणो के अभाव में मानव निर्जीव हो जाता है।

अभयदत्त—वशानुगत सत्ता पीढियो तक स्वत्व की रक्षा में पुरुषार्थ करती है। गणतन्त्र का नायक स्वय चाहे कितना वीर हो—लेकिन उसके बाद उसके पुरुषार्थ से उपार्जित सत्ता और प्रभुता अनाथ हो जाती है, जिस प्रकार विक्रमादित्य के पश्चात् मालव-भूमि हो गई थी। मालव प्रदेश गणतन्त्र न होकर एकतन्त्र साम्राज्य होता और विक्रमादित्य के वशज उस साम्राज्य के उत्तराधिकारी होते तो मगध के स्थान पर मालव प्रदेश ही सारे भारत का स्वामी बनता।

विष्णुवर्धन—और मालवपति यदि भारत-सम्राट् बनते तो जिस भांति दो-चार उज्ज्वल नक्षत्र चमककर तिरोहित हो गए उसी भांति वे भी हो जाते। मैं तो मालव भूमि के लिए उस दिन को अभिशाप समझूंगा जब यहां के एक भी हृदय में सम्राट् बनने की दुराशा जन्म लेगी। मालवों के हृदय में साम्राज्य की लालसा नहीं, स्वाधीनता की इच्छा होनी चाहिए—जो कि मैं समझता हूं हम

में है—और यही इच्छा हमें सारे भारत में जाग्रत करनी है। तभी हम हूण जैसी निरकुश, नृशस और शक्तिशाली जातियों को भारतभूमि से निर्वासित कर सकेंगे।

मंदाकिनी—लेकिन, भैया, तुम्हारे इन विचारों से अवगत होकर क्या मगध, कलिग, सौराष्ट्र और दक्षिणापथ के नृपति हमारे कार्य में साथ देंगे ?

विष्णुवर्धन—भारत के प्रत्येक नृपति को भारत की स्वतन्त्रता के युद्ध में सहयोग देने का निमन्त्रण हम देंगे, किन्तु मै समझता हूँ कि वे हमें सहयोग देने की अपेक्षा हूणो के माण्डलिक वनकर अपने निहित स्वार्थों की रक्षा करना श्रेयस्कर समझेंगे। राजतन्त्र में यही तो त्रुटि है अत हमें तो केवल जनशक्ति पर निर्भर रहना होगा।

जयदेव—किन्तु हूणो से युद्ध करने के लिए विशाल सेना और विपुल शस्त्रास्त्र की आवश्यकता होगी। इन साघनों को जुटाने के लिए धन चाहिए।

विष्णुवर्धन—सम्राट् और राजा सैनिको और धन की प्राप्ति कहाँ से करते है, सर्वसाधारण जनता से ही न ! हम मातृभूमि की स्वाधीनता के नाम पर माताओ से उनके पुत्रो की, पत्नियो से पतियो की, वहिनो से भाइयो की भीख माँगेंगे। हमारे देश की प्रत्येक कुटी से धन-जन की वर्षा होगी। रण-नाद से दशो दिशाएँ गूंज उठेंगी।

धर्मदास—तुम समझते हो जनता स्वेच्छा से हमें धन-जन की सहायता करेगी—किन्तु शास्त्र कहते हैं कि धन-प्राप्ति के लिए दण्ड चाहिए।

विष्णुवर्धन—जनता के हृदय में जन्म-जात स्वाधीनता की भावना ही हमारा राजदण्ड होगा। मैंने आज दशपुर के तक्षन, कर्मार, हिरण्यकार, चर्मकार, वाय, उपलप्रक्षिणो, तिलपिपक आदि श्रेणियो के अध्यक्षो को आमन्त्रित किया है। स्वाधीनता-सग्राम में ये श्रेणियां क्या सहयोग देंगी इस पर इनसे आज विचार-विनिमय

करना है।

धर्मदास—इन्ही अध्यक्षो में कोई विश्वासघाती देशद्रोही नराधम हमारी योजनाएँ शत्रु को प्रकट कर दे तो ?

विष्णुवर्धन—आपकी आशका निर्मूल नही है—लेकिन राजनीति के आचार्य चाणक्य ने मनुष्य के मन के भेद अतर के रहस्यमय गर्त में से निकाल लाने के जो उपाय बताए है उनका प्रयोग कर परीक्षा लेकर मैंने खरे व्यक्तियो को ही बुलाया है।

अभयदत्त—हमें तुम्हारे विवेक पर विश्वास है, विष्णु। अब यह बताओ कि हम लोगो से क्या कार्य लेना चाहते हो ?

विष्णुवर्धन—आप मेरे अनस्तित्व के आकाश मे अवस्थित भारतीय गणतन्त्र के सधिविग्रहक हो।

धर्मदास—और मे ?

विष्णुवर्धन—तुम महाबलाधिकृत।

धर्मदास—मेरी सेना ?

विष्णु—भारत का प्रत्येक शस्त्र धारण करने वाला युवक आपका सैनिक है।

[कुछ दूर वीणा-वादन की ध्वनि सुनाई देती है
जो निकटतर होती जारही है।]

मंदाकिनी—इस सुनसान वन-पार्वत्य प्रदेश में वीणा कौन बजा रहा है ?

सुहासिनी—जान पडता है वत्स है। बडी जल्दी ध्यान गया तुम्हारा !

मंदाकिनी—और बहुत जल्दी पहचाना तुमने !

[वीणा बजाते हुए ब्रह्मचारी के वेश में वत्स का
प्रवेश।]

मंदाकिनी—किस निराशा ने तुम्हे वैराग्य की रागिनी छेड़ने को विवश किया है !

वत्स—देवि, ब्रह्मचारी ने तो गृहस्थाश्रम के प्रथम सोपान पर भी चरण

नही रखा—वैराग्य तो उससे बहुत दूर है ।

सुहासिनी—तो निराश क्यो होते हो, युवक ! (मदाकिनी की ओर स्मितिमयी चितवन डालकर) कोई सुन्दरी आषाढी आँखो से रस-वृष्टि करके ब्रह्मचर्य की शुष्कता को रस-प्लावित कर देगी ।

विष्णुवर्धन—किन्तु, इसके सखा नाम के देवता का अभिशाप ब्रह्मचारी को चिरकाल तक गृहस्थाश्रम की सीढियो पर पदार्पण करने से वचित रखेगा ।

अभयदत्त—और गृहस्थाश्रम की सीढियो पर चढ चुके है उन्हें भी वैराग्य के शिखर पर ढकेलकर पाताल मे कुदाकर प्राण विसर्जन करने को बाध्य करेगा ।

सुहासिनी—प्राण विसर्जन करने को बाध्य करेगा या वीर-गति प्राप्त करने को ?

मदाकिनी—प्राण विसर्जन कहो या वीर-गति प्राप्त करना—दोनों का अर्थ है मृत्यु !

विष्णुवर्धन—किन्तु, मै कहता हूँ प्रीति का प्रपच और मृत्यु के भय को राजनीति के रगमच पर स्थान नही मिलेगा, अत इस चर्चा को समाप्त करो और वत्स, यह बताओ कि तुमने उज्जयिनी में क्या किया ?

वत्स—मैने विजय प्राप्त की !

विष्णुवर्धन—कैसी विजय ?

वत्स—विजय, कचनी के मन पर वत्स की विजय !

मदाकिनी—मैने समझा था तुम तोरमाण को बदी बनाकर लाए हो, किन्तु ज्ञात हुआ कि स्वय बदी होकर आए हो ।

सुहासिनी—सर्वथा असत्य, बदी होने और आने में विरोधाभास है । बदी हुए तो आए नही, आए तो बदी नही हुए । हाँ, आकर बदी हुए ऐसा कहो तो ठीक है ।

मदाकिनी—यह क्यो न कहा जाए कि आकर भी नही आए ।

वत्स—या यह कहो कि वन्दी होकर भी वत्स वन्दी नहीं हुआ।

विष्णुवर्धन—परिहास छोड़ो वत्स, और काम की बात करो। तुमने उज्जयिनी में क्या तीर मारा ?

वत्स—ऐसा तीर मारा की सोने का हिरण जीतेजी मर गया। वत्स ने ब्रह्मचर्य के तेज और महामुनि नारद की प्राण-प्रिया वीणा के स्वरो की माधुरी से जादूगरनी का मन जीत लिया, जिसके हाथ में सबके मन हैं।

मंदाकिनी—जान पडता है कि महाकाल की नगरी में भाँग-धतूरा खाकर तुम अपनी सुधबुध कैलास पर्वत पर चढा आए हो।

वत्स—नहीं देवि, मेरी सुधबुध सौन्दर्य की सुरसरि के तट पर ही लहरें गिन रही है, मैं जो कह रहा हूँ वह परम सत्य है। हमें हमारी सेना का निर्माण करना है—इसलिए…

अभयदत्त—इसलिए, कवि-सम्राट्, वेश्याओ का दल लेकर रक्त के प्यासे रिपु से सग्राम करोगे ?

वत्स—कलिकाल के महारथी अर्जुन अभयदत्तजी, मैं आपकी भाँति अग्नि-वाण छोड़ना नहीं जानता। मैं तो शब्द-वाण से ही कचन-मृग को घायल कर लेता हूँ—काव्य और कला पर मैं शस्त्रो-की-सी धार धरना चाहता हूँ।

धर्मदास—साधु-साधु, तो यह कहो कि कचनी के नयन-वाण का प्रयोग करोगे। उपाय अति उत्तम है, किन्तु यह स्थायी सरक्षण नहीं है।

मदाकिनी—और इससे भारतीय महिलाओ की मर्यादा पर प्रहार होगा।

विष्णुवर्धन—और पुरुषो का पुरुषार्थ पीडित होगा। राजनीति कवि-कल्पना नहीं है, वत्स! हमें तो भारतीय हृदयो में स्वत्व-रक्षा, स्वाधीनता-प्रेम और स्वाभिमान के लिए मर-मिटने का पागलपन जाग्रत करना होगा।

वत्स—यही तो मेरा अभीष्ट है। मैंने सोचा है कि स्वाधीनता-प्रेम, देश-भक्ति और वीरत्व की भावनाओं से ओत-प्रोत नाटको के अभिनय

द्वारा जन-मन के यौवन को जाग्रत किया जाए। इस कार्य में कचनी का सहयोग उपयोगी है।

अभय—ह ह, कवि-सम्राट्, कचनी के नूपुरो की ध्वनि और रूप-किरणो ने तुम्हारे ज्ञान-तन्तुओ को मूर्छित कर दिया है, इस कारण तुम देश के नियमो को भूल गए हो। वेश्या पर राज्य का अधिकार होता है। क्या तुम समझते हो धन्यविष्णु उसे मुक्त कर देगा।

वत्स—हूँ! (सोच में पड जाता है)

विष्णु—तुम्हारी कल्पना का स्वर्ण-महल धराशायी हो गया।

मदाकिनी—नही! मै वत्स की कचनी बनूंगी।

सुहासिनी—अर्थात् वत्स की नायिका बनोगी। जोडी तो सुन्दर रहेगी।

अभयवत्त—समाज भद्र महिला का रगमच पर अभिनय करना उचित नही समझता।

मदाकिनी—देश के प्राणो में नवीन रक्त-सचार करने के लिए मुझे अभद्र कहलाना भी स्वीकार है।

विष्णु—देश के प्रसुप्त पुरुषार्थ को जाग्रत करने के लिए भद्र महिलाओं का रगमच पर अभिनय करना पुण्य-कार्य है।

सुहासिनी—अवश्य ही, यदि मुझे अभी अपने अस्तित्व को गुप्त न रखना होता तो मै भी अभिनेत्री बनती।

उमा—मै भी इस कार्य के लिए प्रस्तुत हूँ।

धर्मदास—बस तो फिर तुम्हारा कार्य बन गया, वत्स। अब यह कहो नाटक कौन सा खेलोगे ?

वत्स—सोचा था कवि-कुल-शिरोमणि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल का अभिनय किया जाए। कितना गम्भीर है वह! कितनी कुशलता से उसमें भारतीय आदर्शो का मार्मिक निरूपण किया गया है उसमें ? रस और लालित्य का भडार है वह, किन्तु इस समय तो सर्वसाधारण के रोम-रोम को उन्मत्त कर देने वाली

सुरा चाहिए।

विष्णु—तव !

वत्स—मैंने स्वय ही नाटक लिखा है। नाम है प्रथम जोहर। अलक्षेन्द्र के आक्रमण के समय अग्रश्रेणियो ने बहुसख्यक, साधन-सम्पन्न, सुव्यवस्थित और सुशिक्षित शत्रु-सेना से डटकर लोहा लिया और पराजय को अनिवार्य समझ पराधीनता स्वीकार करने की अपेक्षा जोहर की ज्वाला में जीवनार्पण करना श्रेयस्कर समझा ? किस तरह उन्होने अपने घरो में स्वय आग लगाकर आकाश-चुम्बी लपटो में स्त्री-बच्चो सहित प्रवेश किया। इस कथानक को रगमंच पर प्रत्यक्ष देखकर क्या भारतीयो के हृदयो में ज्वाला नही धधक उठेगी।

जयदेव—इस घटना की पुनरावृत्ति एरण में हो चुकी है।

वत्स—हाँ, और मै अतीत को चित्रित करने के वहाने वर्तमान राजनीति हो तो आँकना चाहता हूँ। इसी प्रकार जन-मन जागेगा।

विष्णु—निश्चय ही वत्स, शत्रु पर अचूक आक्रमण करने के पूर्व जन-मन को जाग्रत करना परमावश्यक है।

[कई श्रेणियो के अध्यक्ष आकर विष्णुवर्धन को नतमस्तक होकर अभिवादन करते है। विष्णुवर्धन हाथ जोड़कर उत्तर देता है।]

विष्णु—अब गुहा में चलकर अपनी योजना पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

आठवाँ दृश्य

[स्थान—उज्जयिनी से दशपुर जाने वाला मार्ग । समय—मध्यान्ह । एक भील, जिसका नाम मालू है, और एक क्षत्रिय सैनिक जिसका नाम भीमदेव है, दशपुर की दिशा में जा रहे हैं । मालू अपनी जातीय वेश-भूषा में है । उसके कधे पर धनुष टँगा हुआ है और हाथ में कुछ वाण हैं । भीमदेव सैनिक वेश में हैं । उसके कमर से तलवार बँधी हुई है । कहीं से "वचाओ, वचाओ" का आर्तनाद सुनाई देता है, जो सहसा बद हो जाता है ।]

मालू—जान पडता है ववर हूण किसी अबला पर अत्याचार कर रहे हैं ।

भीमदेव—नगर के वाहर चाडालों के उपयोग के लिए जो कूप है सभवत वही से यह आर्तनाद आया है ।

मालू—हमें उसकी रक्षा करनी चाहिए ।

भीमदेव—और अपने प्राण गँवा देने चाहिएँ । एक चाडाल स्त्री के लिए अपनी जीवन-सगिनी का सुहाग लुटवा देना चाहिए ।

मालू—अपने आपको क्षत्रिय—राम और कृष्ण के वशज—सूर्य और चन्द्र के अश कहने वाले, भीमदेव, तुम चाडाल को मनुष्य नही समझते । तुम आर्यजन, चाडाल और अस्पृश्यो को सेवा का पुरस्कार तिरस्कार से देते हो ।

भीमदेव—इसमें तिरस्कार की कोई बात नही है, वर्ण और जाति की व्यवस्था तो समाज की सुविधा के लिए है ।

मालू—समाज की सुविधा के लिए, उन्हें नगर से दूर वसाया जाता है । तुम्हारी सेवा करने जव वे नगर में प्रवेश करते हैं तव उनकी अपवित्र छाया पडने से आर्यों की कचन-काया अपवित्र न हो जाए, इसलिए उन्हे लकडी वजाते हुए आना पडता है ।

भीमदेव—वे गदे काम करते हैं, मालू, इसलिए शिष्ट समाज में उन्हें

स्थान कैसे दिया जा सकता है ?

मालू—शिष्ट समाज ! जो हाथ में सत्ता और धन आ जाने पर अपने ही समाज के अगो के स्वाभाविक रक्त-सचार को बांधकर उन्हे सुखा डालते हैं, विकास और उन्नति के सारे मार्ग रोककर उन्हे गदे कार्य करने और गदे बने रहने को बाध्य करते हैं, जो समाज के शरीर में स्वय कोढ के कीटाणु प्रविष्ट कर गले हुए अगो से नाक-भौं सिकोडते हैं वे ही शिष्ट समाज के कर्णधार कहाते हैं। उन्होने केवल चाडालो को ही नही, पुलिंद, शवर, भील, मीना, गोड और कोल आदि भारत के आदिवासियो को भी नगरो के सुख-साधनों से वचित कर वन-पशुओ की भांति वन-वन भटकने को बाध्य कर दिया है। अपने आपको सुसस्कृत और सभ्य घोपित करने वाले आर्यो को इस सामाजिक महापाप का मोल चुकाना ही पडेगा। हूणो ने आर्यो पर जो अत्याचार किए हैं उन से तो प्राप्य ऋण का व्याज भी अभी नही चुका। आर्यो द्वारा प्रपीडित, पद-दलित कथित अस्पृश्य और चाडाल एव आदिवासी वर्ग युग-युग का ऋण युग-युग तक चुकाएगा। तुम अपनी भद्रता को लेकर यही खडे रहो लेकिन मैं तो मनुष्यता का कर्त्तव्य पूरा करने जाता हूं।

[मालू प्रस्थान करने को कदम उठाता है लेकिन भीमदेव उसका हाथ पकड़ लेता है।]

भीम—बौद्ध भिक्षुओ की शिक्षाओ ने तुम लोगो को आर्यो के विरुद्ध इतना भडका दिया है कि तुम्हारी सोचने की शक्ति भी नष्ट हो गई है। जान-बूझकर मृत्यु के मुंह में मत घुसो। अत्याचारी हूण कभी इक्के-दुक्के नही रहते। शत्रु का बल जाने विना उससे लोहा लेने चल पडना आत्महत्या है।

[उसी समय चार हूण सैनिक एक युवती को रस्सी से बांधे हुए आते हैं। युवती का मुंह

भी कपड़े से बांध रखा है। युवती प्रार्थनाभरी दीन आंखों से मालू और भीमदेव की तरफ देखती है। मालू धनुष पर बाण चढ़ाता है।]

मालू—छोड़ दो इसे ?

एक हूण सैनिक—हूणो के मार्ग में आने का परिणाम जानता है तू ?

[तीन हूण सैनिक मालू पर आक्रमण करते हैं, एक युवती को सम्हाले रहता है। इतने निकट के युद्ध में धनुष-बाण को बेकार समझकर मालू विद्युत-गति से भीमदेव के कमर में बंधी हुई तलवार खींच लेता है। मालू असि-सचालन में भी इतना निपुण है कि तीनों हूण सैनिकों का सफलतापूर्वक सामना करता है। इसी समय कहीं से दो तीर आते हैं और दो हूण सैनिकों के हृदय में प्रवेश कर जाते हैं। वे आह करके धराशायी हो जाते हैं। इस बीच मालू के आघात से तीसरा हूण भी पृथ्वी पर लोट जाता है। चौथा हूण भागने को उद्यत होता है कि एक बाण उसके भी वक्षस्थल को बेध देता है और वह भी धराशायी हो जाता है। युवती, मालू और भीमदेव जिस तरफ से बाण आ रहे थे उधर देखते हैं। सुहासिनी और उमा प्रवेश करती हैं। सुहासिनी युवती के बंधन खोलने बढ़ती है।]

भीमदेव—वह चाडाल है—अस्पृश्य।

सुहासिनी—चाडाल वे हैं जो मनुष्य को अस्पृश्य समझते है। नीच, नारकी कुत्ते वे है जो आंखों से नारी का अपमान देखकर भी विचलित नहीं होते।

भीमदेव—देवि, क्षमा करें मुझे सैनिक अनुशासन ने रोक रखा था। मालव प्रदेश हूण-सम्राट् तोरमाण के आधीन है और महाराज धन्यविष्णु माडलिक राजा है। उनकी सेना का एक मालव-सैनिक हूणो के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण कैसे कर सकता है ? आर्यो का जातीय गुण है कि वे विश्वासघात नही करते।

सुहासिनी—विश्वासघात किसके प्रति ? उसके प्रति जो स्वय विश्वासघाती है। जिसने अपने सुख के लिए देश के प्रति, सारे भारतवासियो के प्रति और सम्पूर्ण मानवता के प्रति विश्वासघात किया है ? उसके प्रति विद्रोह करना तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है।

भीमदेव—वह राजा है।

सुहासिनी—नही, वह अपराधी है, जनता-जनार्दन के राज-दरबार ने उसे अपराधी घोषित किया है, उसने अपनी माँ की छाती पर हूणो को नृशसता का नगा नाच करने दिया है।

[इसी बीच चांडाल युवती के बंधन खुल चुकते हैं। वह कृतज्ञता के आंसू भरकर सुहासिनी की तरफ देखती है।]

युवती—आप कौन है, देवि ? आकाश से…

सुहासिनी—आकाश से उतरने वाली देवी मै नही हूँ, बहन ! मै भी तुम्हारी जैसी एक अबला हूँ। यद्यपि मैंने राज-महल में जन्म लिया है लेकिन राजमहल की ऊँचाई या विशालता मेरी काया पर पडने वाली विदेशी की विलासपूर्ण दृष्टि को रोक नही सकी और मुझे अपनी रक्षा के लिए शस्त्र हाथ में सँभालना पडा। जब मेरा अग्रज ही शत्रु का दास बनकर मेरे सतीत्व-नाश का तमाशा देखने को प्रस्तुत हो गया तब मेरी चिरसगिनी कृपाण ने मेरा साथ दिया। तब से मैं निकल पडी हूँ भारत के पुरुषो में सोए हुए शकर के तीसरे नेत्र को खोलने के लिए, भारत की नारियो के हृदय में बसी हुई कराला काली को जगाने के लिए।

भीमदेव—तो आप राजकुमारी सुहासिनी...

सुहासिनी—राजकुमारी सुहासिनी तो मर गई है, जो तुम्हें दिखाई दे रही है वह एक मालव-कन्या है। वह विशेष रूप से मालव प्रदेश और साधारणत सम्पूर्ण भारत के आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषों को विदेशी सत्ता को उखाड फेंकने के लिए ललकार रही है।

मालू—किंतु देवि, आर्यों के राज-महलो और अट्टालिकाओं की रक्षा करने हम आदिवासी और ये अस्पृश्य रक्तदान क्यों करें? अब तो समय आया है जब सहस्रो वर्षो से सताए जाने वाले वर्ग आर्यो से प्रतिशोध लें, हूण-सैनिको द्वारा प्रज्वलित अत्याचार की लपटो को हम फूंक मारकर और भी भयकर रूप दें।

उमा—किन्तु, विदेशी के अत्याचार की तलवार आर्य, अनार्य, स्पृश्य, अस्पृश्य का भेद नही जानती। आज की घटना इसकी साक्षी है।

सुहासिनी—मेरे भाई, आर्य और द्रविड सहस्रो वर्षो से इस देश में साथ रहते आए है। दोनो ही इस देश को अपनी जन्म-भूमि मानते है। हमें एक होकर इस देश की स्वाधीनता के वैरी विदेशियो से सग्राम करना होगा।

मालू—सग्राम करना होगा, किस आशा से? श्वानों से भी हीन जीवन बिताने के लिए? आर्यो के डाले हुए टुकडो से उदर-पूर्ति करने के लिए? अश्वो की भाँति आर्यो के ऐश्वर्य-रथ को खींचने के लिए?

सुहासिनी—तुम्हारा क्रोध अकारण नही है, भाई! प्रत्येक विवेकशील हृदय को आशका है कि भारत में सामाजिक वैषम्य की जो खाइयाँ खुद गई हैं वे एक न एक दिन हमारी स्वाधीनता को डस लेंगी और विजयी विदेशी विजित आर्यों की भी वही स्थिति कर देंगे जो आर्यो ने आदिवासियो की की है।

मालू—इससे आदिवासियों के चिर-पीडित हृदयो को आत्म-सतोष प्राप्त

होगा।

सुहासिनी—आत्म-सन्तोष ! यह तो अपनी नाक कटाकर दूसरे का अपशकुन करने वाली बात हुई। आर्य दास बनेंगे तब भी आदिवासी राजा नही बन जाएँगे। पाँव पकडकर आर्यों को भी रसातल में खीचकर आदिवासी उन्नति के शिखर पर नही चढ पाएँगे।

मालू—तब हमें क्या करना चाहिए ?

सुहासिनी—हमे मिलकर अपने शत्रु को भारतभूमि से निर्वासित करना पडेगा। स्वाधीनता-सग्राम में आर्य और द्रविड, स्पृश्य और अस्पृश्य जब कधे से कधा भिडाकर वैरी से लोहा लेंगे तो हमारे शरीर के साथ हृदय भी निकट आएँगे। सामाजिक विपमता की खाइयाँ स्वय पट जाएँगी। हम सब समता के आकाश के नीचे प्रीति के धरातल पर खडे होकर मानवता की साँस लेंगे।

युवती—क्या कभी ऐसा होगा ?

सुहासिनी—ऐसा होगा अथवा नही, इसका उत्तर समय के गर्भ में है। हमें शिव, सत्य और सुन्दर के पथ पर चले चलना चाहिए। हम कर्म करेंगे तो महाकाल हमें सफलता देगा ही।

भीमदेव—निश्चय ही स्वर्गीय सदेश की वीणा बजाने वाली नवयुग की गायिका ! आप जैसी देवियाँ जब देश के बल, विक्रम और विवेक को जाग्रत करने के लिए घर-घर तान सुनाएँगी तो हम आत्मा की ध्वनि को सुनने में अवश्य समर्थ होगे। मैं (भीमदेव सुहासिनी के चरण छूता है) महाकाल को प्रत्यक्ष समझकर शपथ ग्रहण करता हूँ कि अत्याचारी हूणो से भारतभूमि को मुक्त किए बिना विश्राम नही लूँगा।

सुहासिनी—हमें प्रत्येक भारतीय से ऐसी ही शपथ लेनी है। हमारा प्रथम प्रहार जनता के आलस्य, अवहेलना, उपेक्षा और कातरता पर होगा। गई हुई स्वाधीनता को प्राप्त करना सरल नहीं है, विशेपत जब कि हमारे ही देश के कुछ राजा-महाराजा,

धनकुबेर और धर्मांध पुजारी अपने निहित स्वार्थों को रक्षा करने के लिए देश की स्वाधीनता को बेचने को प्रस्तुत हैं। देश को स्वतन्त्र करने का भार आज सर्वसाधारण जनता के कंधों पर आ पड़ा है। बोलो तुम प्रस्तुत हो।

सब—हाँ, हम प्रस्तुत हैं।

सुहासिनी—तो एक स्वर से बोलो भारत माता की जय!

सब—भारत माता की जय!

[पटाक्षेप]

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

[स्थान—उज्जयिनी नगरी के बाहर जन-शून्य क्षिप्रा-तट। समय—रात्रि का प्रारंभ । गगन में चन्द्रोदय हो गया है। वत्स और कंचनी का प्रवेश । यद्यपि इस समय कचनी बहुमूल्य वस्त्रालंकारो से सुसज्जित और अलंकृत नहीं है तथापि उसका स्वाभाविक सौन्दर्य शशि-किरणो से चुंबित कुमुदिनी के समान प्रफुल्लित और उल्लसित है । चेदिनगरी की झीनी रेशमी साड़ी में कंचन-तन की आभा अनोखा आकर्षण उत्पन्न कर रही है। वत्स मुग्ध दृश्य से रूप-राशि का पान करता हुआ मद्यप की भांति लड़खड़ाता-सा चला आ रहा है।]

कंचनी—वत्स, क्षिप्रा के जनाकीर्ण जन-रव परिपूर्ण घाट से दूर इस निर्जन स्थान पर मुझे क्यो ले आए हो ?

वत्स—और तुम क्यो चली आई हो ?

कचनी—कृष्ण ने वसी की तान में आह्वान-गान वजाया और राधा घर में दीपक जलाते-जलाते उसे अनजला छोड़कर मन्त्र-मुग्ध सर्प की भांति चली आई ।

वत्स—कृष्ण भी है, राधा भी है, दोनो के श्वासो में उमड़ने वाले प्रीत-पवन के स्पर्श से महाकाल की क्षिप्रा श्याम की यमुना वन गई है। आकाश से शशि मुसकराकर कह रहा है, मैं राधा और कृष्ण का रास देखना चाहता हूँ।

कंचनी—तुम नृत्य करोगे मेरे साथ ?

मालव-नरेश के हाथो में तलवार पकडने की शक्ति शेष है।

घन्यविष्णु—कचनी व्यग-वचन के विषबुझे बाण मुख के तूणीर में ही रहने दो और यह बताओ कि यह महा मूर्ख युवक कौन है ?

कचनी—पहले इस महाकाली की रक्त-लोलुप-जिह्वा-सी असि को म्यान में अवस्थित कर दीजिए तब बताऊँगी।

[घन्यविष्णु तलवार को म्यान में करता है।]

घन्यविष्णु—अब बताइए ।

कचनी—बताऊँ क्या, अभी तक निश्चित परिणाम पर नही पहुँची हूँ।

घन्यविष्णु—किस बात के परिणाम पर ?

कचनी—इस बात के परिणाम पर कि मूर्ख कौन है ?

घन्यविष्णु—(सक्रोध) अर्थात् तुम मुझे भी ·

कचनी—नही राजन्, मे केवल मालव-महीपति घन्यविष्णु की बात नही मानवमात्र की बात सोच रही हूँ। मालवपति, बाहुओं में बल और प्राणो में प्राण रखते हुए भी मनुष्य वृषम की भाँति पराधीनता का, जुआ बिना विरोध प्रदर्शित किए वहन करता है, हाथो में गला घोंटकर मर जाने की शक्ति रखते हुए भी नारी रूप-जीवा बनती है और इस युवक की भाँति भद्रकुल में जन्म लेने वाले व्यक्ति रूप-जीवा से प्रेम-निवेदन करने का अवसर खोजते फिरते हैं।

घन्यविष्णु—तो यह कहो कि इस उन्मत्त श्वान का प्रेम-निवेदन सुनने के लिए कचनी निर्जन क्षिप्रा-तट पर आई है, किन्तु कचनी में अपने किसी प्रतिस्पर्धी को सहन नही करूँगा। इस युवक को मुझसे द्वन्द्व-युद्ध करना पडेगा। (वत्स से) निकालो तलवार।

[घन्यविष्णु तलवार तानता है लेकिन वत्स अविचलित खड़ा रहता है।]

वत्स—मालव के माडलिक, घन्यविष्णु, वास्तविक शूर की असि म्यान से प्रकट होकर रक्त-स्नान से पवित्र हुए बिना पुन विवर में प्रवेश नहीं करती, और अभी मेरी असि विश्राम · ··

धन्यविष्णु—किन्तु मेरी तलवार तेरे हृदय में अपने विवर का निर्माण करेगी।

[धन्यविष्णु प्रहार करने को उद्यत होता है किन्तु कंचनी हाथ पकड़ लेती है।]

कंचनी—रहने भी दो वीर-शिरोमणि मालव-महीपति। युद्धेच्छु से ही युद्ध करना उचित है। आपकी इस पागल से तुलना ही क्या? यह तो ब्रहन्नला की भाँति नृत्य करता है, तुंबुरु की भाँति वीणा बजाता है, वाल्मीकि की भाँति छद-रचना करता है और पपीहे की तरह प्राणो की पुकार को गीतो में भरता है। अत्यन्त कोमल प्राणी है यह, क्या वीर पुरुषो की तलवार चन्द्र-किरणो पर उठती है, कोमल कमलो को काटती है। आपके हाथो में शक्ति है तो उस चट्टान का वक्षस्थल विदीर्ण करो जिसे मेरे गान की कोकिला, मेरे नृत्य के मयूर, और मेरे रूप-यौवन के राजहस अनुराग-रजित नही कर सके।

धन्यविष्णु—तुम्हारा तात्पर्य ?

कंचनी—सूर्य-प्रकाश को भी क्या दीप जलाकर दिखाना पडेगा ?

वत्स—इनमें इतनी ही सूझ होती तो क्या यह अपनी सहोदरा को ....

धन्यविष्णु—(क्रोध से उन्मत्त होकर) नीच, नराधम !

[धन्यविष्णु वत्स पर प्रहार करता है, किन्तु वत्स विद्युत-गति से तलवार निकालकर उस पर प्रहार झेल लेता है। दोनों युद्ध करते हुए प्रस्थान करते हैं। कंचनी प्रशंसाभरी मुग्ध दृष्टि से निहारती रहती है।]

कचनी—साधु, साधु, रण भी सृष्टि के रगमंच पर गाया जाने वाला एक सगीत है। सगीत-शास्त्र के सब रागों से विलक्षण है पुरुष के पौरुष का राग। जब तलवार से तलवार बजती है तब जो झंकार उठती है उसकी तुलना में वीणा की झकार भी तुच्छ है। मै समझती थी कवि केवल गीत गाना जानता है—तलवार तो केवल

प्रदर्शन में बांध रखी है, किन्तु आज मैंने उसके पराक्रम का ऐसा ताडव देख लिया है जिसके तोड भुलाये भी नही भूलेंगे। स्वप्न और जाग्रति में स्मृति के घन-मडल में विद्युत-रेखा-सी तलवार चमकती दिखाई देगी।

[कचनी फिर कुछ देर मुग्ध होकर देखती है। वत्स धन्यविष्णु का हाथ पकड़े हुए उसे बलपूर्वक लाता हुआ प्रवेश करता है। धन्यविष्णु के हाथ में तलवार की केवल मूठ रह गई है।]

कचनी—(धन्यविष्णु से) व्यर्थ ही मूल्यवान तलवार की हानि उठाई। आपके इगित पर सहस्रो तलवारें इस उद्धत युवक के शरीर को सहस्राक्ष बनाने के लिए प्रस्तुत हो सकती है। यदि मालववीर प्रमादवश मालवपति की आज्ञा की अवहेलना करे तो बर्बर विदेशी हूण तो प्रस्तुत है ही। अपने मित्र के लिए वे क्या नही करेंगे ?

[इस बीच वत्स धन्यविष्णु का हाथ छोड देता है।]

धन्यविष्णु—कचनी, तलवार से भी तीक्ष्ण जिह्वा को विश्राम दो। नही तो ··

कचनी—नही तो मेरी जिह्वा को खड-खड कर दोगे जैसे इस युवक ने आपकी असि को कर दिया है।

धन्यविष्णु—कचनी, मेरा अपमान करके तुम मृत्यु का आवाहन कर रही हो।

कचनी—(धन्यविष्णु के पैरों में बैठकर हाथ जोडकर) क्षमा करो देव, अभी मेरी मरने की इच्छा नही है। परिहास सीमोल्लघन कर गया, इस कारण आपने समझ लिया कि मै आपका अपमान कर रही हूँ। मै तो आपकी चिर-सेविका हूँ—आपके इगित पर मेरे नूपुरो ने रात्रियो को मुखरित किया है, भला मै आपके प्रति धृष्टता करने का दुस्साहस कर सकती हूँ।

धन्यविष्णु—मायामयी, तुम्हारे कौन से शब्द परिहास है और कौन से उपहास इसका अनुमान करना भी कठिन है।

कचनी—(उठकर खड़ी होकर) राजन् ! सपूर्ण विश्व ही विधाता का क्रीडा-कौतुक है। न यहाँ कोई राजा है, न कोई नर्तकी है, न कोई कवि है, और न यह क्षिप्रा की धारा। सब कुछ अनस्तित्व के आकाश मे माया का खेल है। कचनी ने जीवन को खेल समझकर ही खेला है—किन्तु खेल में यह छल नही करेगी। राजा को राजा के—और इस युवक के समान रक याचको को उनके योग्य ही स्थान देगी। इस युवक पर भी आप क्रोध न करें क्योकि इस समय यह प्रमत्त है, इसीलिए कुछ दुस्साहस कर बैठा।

धन्यविष्णु—कौन है यह ?

कचनी—कचनी से प्रीति करने का स्वप्न देखने वाले अगणित तारको में से एक यह भी है। अभी तक तो नाम भी नही पूछ पाई हूँ।

धन्यविष्णु—तो तुम इससे मिलने यहाँ क्यो आई ?

कंचनी—मैंने तो स्वप्न में भी इससे मिलने की कामना नही की थी—यह स्वय ही मेरे मार्ग में आ पड़ा।

वत्स—नर्तकी, तुम मेरा अपमान कर रही हो मै तुम्हे दण्ड दूंगा।

कचनी—दण्ड दोगे ? जैसे भारत के सम्राट् हो। (धन्यविष्णु से) सुना इस युवक के कथन को। इस प्रकार बोलता है मानो मिहिर-कुल का प्रपितामह है।

धन्यविष्णु—छोडो भी इस मूर्ख को, मेरा रथ पास ही खडा है, चलो तुम्हे पहुंचा दूं।

कंचनी—कही मुझ से क्रुद्ध होकर मुझे कारागार मे तो डालने का उपक्रम नही कर रहे ?

धन्यविष्णु—(सुदीर्घ निश्वास छोड़कर) यदि इतनी शक्ति मुझ में होती···

कंचनी—यदि मालव-पति में इतनी शक्ति नही है तो यह पागल युवक

भी कचनी का बाल बाँका नही कर सकता। आप निश्चित होकर राजमहल में सुख की नीद लीजिए—यह तस्कर मेरे यौवन-उपवन का एक पुष्प भी नही चुरा पाएगा। अब आई हूँ तो कुछ देर नौका-विहार करूंगी

धन्यविष्णु—तो मै भी

कचनी—नही, नही आप कष्ट न करें। न जाने किस समय आपके अभिन्न हृदय मित्र युवराज मिहिरकुल को आपकी आवश्यकता आ पडे। कितना प्रेम है उनका आप पर? और क्यों न हो—भारत में हूण-साम्राज्य के सुख-स्वप्न का आधार जब आप ही हैं, जैसे पृथ्वी शेषनाग के सहस्र फणों पर आधारित है। अब आप इस भार को फेंकना भी चाहें तब भी आपके विष्णु ऐसा करने नहीं देंगे।

धन्यविष्णु—कचनी, तुम मुझे-विचार-सागर में निमग्न कर देती हो।

कचनी—किन्तु, फिर भी आप अपने विष्णु के क्षीर-सागर के बाहर नहीं आ सकोगे, इसलिए सोचने-विचारने की झंझट मत पालो। आप तो निश्चित होकर रत्न-खचित स्वर्ण पर्यंक पर मखमली गद्दों पर गुलाब की पखुरियाँ बिछाकर सो जाइए। जिन्हें शूलों पर रात बितानी है वह तो बिताएँगे ही।

धन्यविष्णु—(दीर्घ निश्वास सहित) हूँ, मैने तुम्हें फूल समझा था किन्तु फूल में शूल

कचनी—और फूल ही शूल निकला।

धन्यविष्णु—फूल ही शूल निकला।

[विचारों में डूबा हुआ चला जाता है। वत्स और कचनी एक-दूसरे की तरफ देखते हैं। कचनी के अधरो पर मधुर मुस्कान खेलती है किन्तु वत्स गम्भीर बना रहता है।]

कचनी—वत्स!

वत्स—मैं तुम से नहीं बोलूंगा। तुमने मुझे मूर्ख, पागल और न जाने

क्या-क्या कह डाला ।

[कचनी बढकर वत्स का हाथ पकड लेती है ।]

कचनी—मैंने सत्य ही तो कहा था । शास्त्रो में लिखा है—प्रेम करने वाले मूर्ख, पागल और अंधे होते है । जो तुम हो वही मैं भी हूँ । चलो, इस मादक चाँदनी रात में कुछ देर क्षिप्रा की हलकी हिलोरो पर अपनी जीवन-तरी को झुलाएँ । केतकी-कुंज से आने वाला सुरभित समीरण सांसो में नशा भर रहा है । ज्योत्सना से जगमगाती हुई क्षिप्रा की रजत-धारा गीत गाकर आमन्त्रण दे रही है । दूर तक फैले हुए मालव भूमि के अफीम के समान काले-काले खेत आँखो को अलसित कर रहे है । चलो वत्स जीवन के दो क्षण कृतार्थ हो ले ।

[वत्स को खींच ले जाती है ।]

[पट-परिवर्तन]

द्वितीय दृश्य

[स्थान—सघन वन-खण्ड में गुहा-द्वार । समय—रात्रि । चांदनी रात का प्रकाश । गुहा-द्वार से विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) आता है और गुहा-द्वार के भीतर हाथ बढाता है । एक सुन्दर नारी-कर उसके हाथ में आता है जिसे ग्रहण कर वह खींचता है । ऐसा जान पड़ता है कि वह कुछ नीचे स्थान से किसी युवती को बाहर आने में सहायता प्रदान कर रहा है । विष्णुवर्धन के सहारे से सुहासिनी गुहा से बाहर आती है । दोनो सैनिक वेश में है । स्कन्धों पर धनुष, पृष्ठ पर तूणीर और कटि-प्रदेश पर तलवार शोभित है ।]

सुहासिनी—(श्वास लेकर) ओह !

विष्णुवर्धन—क्यों परिश्रात हो गई ?

सुहासिनी—परिश्रात तो नहीं ।

विष्णुवर्धन—तब ?

सुहासिनी—तुमने मेरा पाणि-ग्रहण किया तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो एक साथ सहस्र विद्युत-धाराएँ शरीर में प्रवाहित हो गईं ।

विष्णुवर्धन—अथवा ऐसा ज्ञात हुआ कि एक साथ सहस्रो वृश्चिको ने डस लिया ।

सुहासिना—कदाचित् तुम्हे ऐसा ही ज्ञात हुआ होगा ।

विष्णुवर्धन—मुझे तो ऐसा जान पडा जैसे सहस्र वज्र मेरी मुट्ठी में आ गए हैं ।

सुहासिनी—तो तुम समझते हो कि मै वज्र के समान कठोर हूँ ।

विष्णुवर्धन—नही नारी पुरुष को वज्र से भी कठोर, शक्तिशाली और सहारक बनाने वाली महाशक्ति है ।

सुहासिनी—किन्तु सहारक के प्रति प्रीति की अनुभूति नही भीति की प्रतीति होती है ।

विष्णुवर्धन—विधाता सृष्टिकर्ता, पालनहार के साथ ही सहारक भी है । ससार में सहार न हो तो वसुधा विषधरो और हिंसक जतुओ से भर जाए और सृष्टि का जीवित रहना भी असभव हो जाए । अशिव, अमगलकारी का सहार कल्याणकारी होता है । कर्ता जब हर्ता बनता है तो क्या असुन्दर हो जाता है, सुहासिनी !

सुहासिनी—जो प्राणो को एक बार प्रिय लग जाता है वह प्रत्येक रूप में प्रिय ही लगता है, विष्णुवर्धन ।

विष्णुवर्धन—मै यह नही पूछ रहा था ।

सुहासिनी—किन्तु, मै निवेदन करना चाहती हूँ कि तुम्हारे लोचनों में स्नेह-सागर लहराता हुआ देखकर मै जितनी पुलकित होती हूँ, प्रज्वलित ज्वालामुखी देखकर भी उतनी ही प्रफुल्लित ।

विष्णुवर्धन—मुझे देखने के अतिरिक्त कुछ और भी कार्य है तुम्हें, सुहासिनी !

सुहासिनी—मैं चाहती हूँ कि तुम भी मुझे ही देखो।

विष्णुवर्धन—तब देश को कौन देखेगा ?

सुहासिनी—तुम देश को देखते हुए यह भूल जाओगे कि तुम्हारे साथ तुम्हारी छाया भी अनुगमन कर रही है।

विष्णुवर्धन—प्रतिबिम्ब का अस्तित्व ही बिम्ब की उपस्थिति का प्रमाण होगा, सुहासिनी !

सुहासिनी—विष्णु !

विष्णुवर्धन—मैं सोचता हूँ ·

सुहासिनी—क्या ?

विष्णुवर्धन—समुद्र की उत्ताल उन्मत्त तरगो की भाँति अपनी भुजाओ को प्रसारित कर तुम्हें उठालूं।

सुहासिनी—मैं मिलन-रागिनी गाने वाली कल्लोलिनी की भाँति तुम्हारी गोद में मुंह छुपालूं।

विष्णुवर्धन—और मैं युग-युग से प्यासे अधरो से तुम्हे पी जाऊँ।

सुहासिनी—और मैं ससार के पर्वतो और चौगानो का जीवन ला-लाकर पिलाती रहूँ।

विष्णुवर्धन—किन्तु ·

सुहासिनी—किन्तु ?

विष्णुवर्धन—जीवन स्वय अपनी प्यास नही बुझा सकता। वह तो दूसरो की प्यास बुझाने के लिए है।

सुहासिनी—तो तुम मेरी प्यास बुझाओ और मैं तुम्हारी।

विष्णुवर्धन—किन्तु, हम जीवन से लबालब दो बादल है जो आकाश में साथ-साथ उड रहे है। सभव है, हम इतने निकट आगए हो कि अब दो नही रहे। किसने किसको पी लिया यह ज्ञात ही नही हो सका।

सुहासिनी—अतृप्ति कहती है—नही पिया।

विष्णुवर्धन—तृप्ति ने ससार में अभी जन्म नही लिया—इसलिए पीकर अतृप्त रहने से न पीकर अतृप्त रहना अधिक महिमामय है। हमारे जीवन आकाश में घन बनकर छा रहे हैं और पृथ्वी कहती है मै प्यासी हूँ। हम स्वय तो अतृप्त ही रहेगे, किन्तु पृथ्वी के जलते हृदय को शात करने का प्रयत्न करेंगे।

सुहासिनी—और पृथ्वी के जलते अधरो से वाष्प बनकर फिर आकाश में भटकने लगेंगे।

[एक बौद्ध भिक्षु सहित वत्स का प्रवेश]

वत्स—जनेन्द्र विष्णुवधन की जय !

विष्णवर्धन—वत्स, मेरा उपहास मत करो।

वत्स—उपहास नही करता, मैंने ही नही भारत के कोटि-कोटि हृदयों ने जनेन्द्र विष्णुवर्धन के कुशल करो को देश की भाग्य-रेखाएँ अकित करने का कार्य सौंप दिया है। कोटि-कोटि कण्ठो में जनेन्द्र की विजय-कामना के स्वर गूँज रहे हैं—वे यद्यपि आज अन्तर्निहित हैं किन्तु किसी भी क्षण आकाश-भेदी गर्जन में प्रकट हो उठेंगे।

विष्णुवर्धन—जन-मन देश का जयनाद भूलकर व्यक्ति का जयनाद करेगा तो वह दो-चार भगवानों की ओर सृष्टि भले ही करले किन्तु अपने पराभव को पराजित नही कर पाएगा। मै कहता हूँ कि व्यक्तियो के अह को श्मशान में ले जाकर जीवित ही चिता पर रख दो। सपूर्ण भारतीय जन-समुदाय का अह देश के सम्मान के महापात्र में ढालकर एकाकार कर दो। किसी व्यक्ति की कोई व्यक्तिगत आकाक्षा न हो—तभी हम महाविनाश से व्यक्तियो की भी रक्षा कर सकेंगे।

सुहासिनी—अर्थात् आत्महत्या करके ही हम जीवन पा सकेंगे।

वत्स—अच्छी बात है, सुहासिनी देवी, आप पुंड्रपुर के कुशल कारीगरो के करो से निर्मित रेशमी रज्जु, जो सुदृढ के साथ सुन्दर भी हो,

मँगा लीजिए और अपने कमल-समान कोमल करो से मेरी ग्रीवा में फदा डालकर मुझे दशपुर के गोपुर के सन्निकट स्थित विशाल वट-वृक्ष की पुष्टतम शाखा पर लटका दीजिए और प्राकार पर मेरे रक्त से लिख दीजिए—"व्यक्ति ने देश की रक्षा के लिए आत्महत्या करली है—यह शव स्वतन्त्रता-मदिर की आधारशिला है।"

विष्णुवर्धन—वत्स, विदूषक बनने का यत्न मत करो। काम की चर्चा होने दो।

वत्स—काम को भगवान् त्रिलोचन ने अनग कर दिया।

विष्णुवर्धन—तभी तो मन्मथ और भी प्रबल हो गया है। वह कब आकर हृदय को उन्मत्त कर देता है यह ज्ञात ही नही होता।

सुहासिनी—क्या तुम वत्स से दूसरा कुमार-सभव लिखाना चाहते हो ?

वत्स—लिखना तो मै भी "कुमार-सभव" चाहता हूँ किन्तु लिख जाता है "कुमारी-असभव"। इतिहास में भीष्म और पवन-सुत जैसे चिर कुमारो के उदाहरण मिलते है किन्तु कुमारियो के नही।

विष्णुवर्धन—हमें अपने प्रयोजन पर आना चाहिए।

वत्स—अवश्य ही! मै यह बताना भूल ही गया कि जनेन्द्र के आदेशानुसार मै बौद्धभिक्षुक महाज्ञान को लाया हूँ।

[विष्णुवर्धन महाज्ञान को प्रणाम करता है।]

विष्णुवर्धन—क्षमा करना देव, मेरे वाचाल मित्र ने बातो में उलझाकर आपको प्रणाम करने का भी अवसर नही दिया।

महाज्ञान—मेरे हृदय ने तुम्हारे अत करण के मूक अभिवादन का अनुभव कर निस्वन आशीर्वाद प्रदान कर दिया है, विष्णुवर्धन।

विष्णुवर्धन—आपको आशीर्वाद का आदर करते हुए यह सेवक आपका क्रियाशील सहयोग चाहता है।

महाज्ञान—मुझ से क्या चाहते हो ?

विष्णुवर्धन—सुना है बौद्ध भिक्षु बर्बर हूणो की सहायता कर रहे है।

महाज्ञान—ऐसा करना अस्वाभाविक नही। जानते हो वैदिक धर्मानुयायी नृपति बौद्धो से क्या व्यवहार करते है ? क्या बौद्ध भूल जाएँ कि मगध के शुग सम्राट् पुष्यमित्र ने मगध से जालन्धर तक के सारे बौद्ध विहारो को भस्मसात कर डाला था और उनके श्रमणों को मरवा डाला था। उसने साकल में घोषणा की थी—"जो मुझे एक श्रवण मस्तक देगा उसे मै सौ दीनार दूँगा।"

विणवर्धन—मै सम्राट् पुष्यमित्र के इस कठोर कार्य का समर्थन नही करता—किन्तु आपसे प्रश्न करता हूँ कि जब बौद्ध विहार शत्रुओ के आश्रय-स्थल और देश की स्वाधीनता के विरुद्ध षड्यन्त्र-केन्द्र बन गए थे, जब बौद्ध दिमित और मिलिंद जैसे विदेशी यवन रक्त-पिपासुओं को भारत पर आक्रमण करने ले आए थे तब पुष्यमित्र देश-द्रोहियो के प्रति कठोर हो गया तो क्या वह अस्वाभाविक था ?

सुहासिनी—और सत्य तो यह है कि पुष्यमित्र बौद्धो का शत्रु नहीं था। बौद्धों के प्रति उसकी सहिष्णुता का ज्वलत प्रमाण साची के तोरणद्वार और भर्हुत के बौद्धस्तूप उपस्थित है। बौद्धविहारो को भस्मसात करने वाले पुष्यमित्र की छत्र-छाया में ही तो इनका निर्माण हुआ है।

वत्स—और भारत में जो वुद्धिमान और शक्तिशाली शासक हुए हैं वे व्यक्तिगत रूप से चाहे किसी भी धर्म के अनुयायी रहे हो किन्तु उन्होने प्रत्येक धर्म को पूर्ण स्वाधीनता और विकास के लिए सुअवसर प्रदान किया है। भागवत चन्द्रगुप्त द्वितीय के सधि विग्रहक शाव वीरसेन और आम्रकार्दव क्रमश शैव और बौद्ध थे, परन्तु उनका वैष्णवेतर होना उनके राजकाज और देश के प्रति कर्तव्य-पालन में बाधक तो नही हुआ।

महाज्ञान—किन्तु, क्या बौद्ध सम्राटों ने कभी वैदिक धर्मावलवियो को पराया समझा ? देवानाप्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अशोक ने आजीविकों ब्राह्मणों, निर्ग्रन्थो और श्रमणों आदि के प्रति समान उदारता और

आदर का व्यवहार किया था। उन्होंने अपने अभिलेख में लिखा है—"सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं और जिस प्रकार मैं अपने पुत्रों का हित और सुख चाहता हूँ उसी प्रकार मैं प्रजा के ऐहिक और पारलौकिक हित और सुख की कामना करता हूँ।"

विष्णुवर्धन—यही तो मैं भी कहता हूँ, देव! शासन को किसी एक धर्म को राजधर्म नहीं मानना चाहिए। भारत के शासक प्रत्येक धर्म के विद्वानों को, कलाकारों को पक्षपात-रहित रहकर पूजा-वेतन और देव-पूजा प्रदान करते हैं। कुछ बुद्धिहीन भूपालों के अपवादों को भूल जाना ही श्रेयस्कर है। हमारे किसी पूर्वज ने प्रमादवश कुछ भूल की है इसका यह अर्थ नहीं कि हम उसे चिरकाल तक स्मरण रखकर अपने राष्ट्रीय जीवन को छिन्न-भिन्न कर दें।

सुहासिनी—देश को पराधीनता के पाश में पड़ने देना तो महापाप है।

महाज्ञानी—इस बात को मैं समझता हूँ।

विष्णुवर्धन—समझते हैं तो आप हमारा साथ दें। भारतवर्ष भर के बौद्ध विहारों में भ्रमण कर बौद्ध भिक्षुओं को स्वतन्त्रता के संदेशवाहक बनाएँ। विदेशियों से बौद्ध धर्म के कल्याण की कामना मृग-मरीचिका की प्यास बुझाने की आशा करने के समान है। वैदिक धर्म परम उदार है उसने शकों जैसे चिर-शत्रुओं को भी अपनी वात्सल्यमयी गोद में बैठा लिया, कार्लेगुफा के लेख के अक्षर कह रहे हैं कि दो यवनों ने वैदिक धर्म ग्रहण कर सिहध्वज और धर्म नाम धारण किये। बेसनगर का स्तम्भ यूनानी राजदूत हेलियोदोर के भागवत होने का प्रमाण उपस्थित कर रहा है। विदेशी भी भारतीय होकर वैदिक धर्म की स्नेह-छाया में सुख-पूर्वक रह सकते हैं, तब क्या वह बौद्धों को शत्रु समझेगा? वैदिक धर्म ने भगवान् बुद्ध को भी धर्म का अवतार माना है। बौद्ध और वैदिक धर्मावलंबी जननी जन्मभूमि भारत की समान सन्तान हैं। कोई माँ

का चीरहरण करे तो दोनो पुत्रो को समान दुख होना चाहिए।

महाज्ञान—निश्चय ही जनेन्द्र।

विष्णुवर्धन—भारत के शुभ दिवस निकट हैं—इसी कारण महाश्रवण ने भारतीय एकता की आवश्यकता को शीघ्र समझ लिया। आज भारत विपत्ति की भँवर में फँस गया है—जिन सम्राटो और भूपालो से जनता रक्षा की आकाक्षा करती है—वे व्यक्तिगत ऐश्वर्य की रक्षा करने के लिए विदेशियो के हाथो अपने देश की स्वाधीनता को बेचने को तत्पर हैं। हमें जनता जनार्दन को जाग्रत कर देश के स्वाभिमान की रक्षा करनी है। आइए मैं विस्तार से आपको अपनी योजना से अवगत कराऊँ।

[सब गुहा-द्वार से एक-एक कर भीतर उतर जाते हैं।]

[पट-परिवर्तन।]

तृतीय दृश्य

[स्थान—उज्जयिनी के राज-प्रसाद में मिहिरकुल का शयनागार। समय—रात्रि का प्रथम पहर। शयनागार में एक तरफ एक पर्यंक अवस्थित है जिस पर विछे गद्दे पर रेशमी या मखमली बहुमूल्य चादर नहीं बल्कि एक साधारण किन्तु उज्ज्वल धवल वस्त्र बिछा है। वैभवशाली विलासी भद्रजनों के शयनागारों में शोभित होने वाले उद्दीपक चित्र नहीं हैं बल्कि भयानक वन-खडों में आखेट करते हुए, या युद्ध में पराक्रम दिखाते हुए योद्धाओ के चित्र हैं। दो विशाल सिंहासन टंगे हुए हैं। फर्श पर कालीनों के स्थान पर भी सिंहचर्म बिछे हैं। शीशम की लकडी के बने हुए तीन सिंहासन कक्ष के बीचों-बीच रखे हैं। शयनागार में भी यत्र-तत्र शस्त्रों की भरमार दृष्टि-गोचर होती है। ऐसा जान पड़ता है कि इस

व्यक्ति में कहीं कोमलता का लवलेश भी नहीं है। मिहिरकुल और हूण सेनापति का प्रवेश।]

मिहिरकुल—मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि हूण-आकांक्षा का पोत भारत के जन-सागर में विलीन हो जाएगा।

[बात करता-करता मिहिरकुल एक सिंहासन पर बैठता है और सेनापति को बैठने के लिए इंगित करता है।]

सेनापति—जीवन में प्रथम बार युवराज के कंठ से विचलित स्वर मैंने सुना है। मैं तो समझता हूँ हूण-शक्ति के प्रचण्ड मार्तण्ड को कुछ क्षणों के लिए काली घटाएँ भले ही आच्छादित कर लें—किन्तु सदा के लिए उसे तिरोहित नहीं कर सकतीं।

मिहिरकुल—घोर ग्रीष्म के रवि की प्रखर किरणों की भाँति हूणों के आतंक का यश संपूर्ण विश्व में फैला हुआ है, उसके प्रचण्ड प्रहार से मानवता त्राहि-त्राहि कर उठी है, भारत के भूपाल भी तोरमाण और मिहिरकुल को प्रलय-दूत समझते हैं, फिर भी मेरे मन में एक खटका-सा बना रहता है। जान पड़ता है कि एरण भारत में हूण सत्ता के विस्तार की अंतिम सीमा-रेखा है। हूण-गौरव के उत्कर्ष का उच्चतम बिंदु है।

सेनापति—ऐसा सोचना व्यर्थ है युवराज! हूण-योद्धा अलक्षेन्द्र के सैनिक नहीं हैं जिनके उत्साह का ज्वार शत्रु-बल को सुनकर ही उतर जाए। मेरे विचार में तो अब मगध के गुप्त साम्राज्य को एक ही झटका और लगाने की आवश्यकता है।

मिहिरकुल—सेनापति, मगध-सम्राट् अथवा उनकी सेना मेरी चिंता का विषय नहीं है। मैं विस्मित हूँ तो भारतीय जन-साधारण के साहस से एरण में जलने वाली ज्वाला तुमने भी देखी है, सेनापति। उस समय तो मैं एरण के नागरिकों को उनके ही भवनों की ज्वाला-लपटों में फेंककर पैशाचिक हँसी हँसा था किन्तु अब उस समय की अपनी

तुच्छता की छाया से भी मैं कांप उठता हूँ—मुझे—ऐसा जान पड़ता है जैसे इस देश का प्रत्येक रजकण उपहास-भरे स्वर में कह रहा है—"हूणों को मैं इस देश का राजा नहीं मानता।"

सेनापति—किन्तु युवराज, आपने तो कहा था कि मैं भारत की कठोर छाती को अपनी विश्वविजयी असि की नोक से चीरकर इस भूमि के कण-कण पर रक्त के अक्षरों में लिख दूँगा—हूण भारत के सम्राट् हैं। रवि-शशि और तारकगण नयन विस्फारित करके देखेंगे कि साधारण हूण सैनिक के आदेश पर भारत के भूपालों के चिरकाल से गर्वोन्नत मस्तक नत होंगे।

मिहिरकुल—हाँ, मैंने कहा था और जो कहा था वही करना भी चाहता हूँ। एक क्षण का विश्राम भी मुझे असह्य है। लक्ष्य-लाभ जितना ही दुस्साध्य दृष्टिगोचर होता है मेरा आग्रह भी उतना ही दुर्दमनीय होता जा रहा है। जब हूण अपनी जन्मभूमि से निकल पड़े हैं तो वे पृथ्वी के ओर-छोर नापना चाहेंगे—बाधाएँ आएँगी—उनसे टकराएँगे—चट्टानों को चूर-चूर करेंगे—या स्वयं ही अपनी आकांक्षाओं में टकराकर चकनाचूर हो जाएँगे।

[धन्यविष्णु का प्रवेश और नमस्कार करना।]

धन्यविष्णु—हूण-कुल-दिवाकर युवराज मिहिरकुल को धन्यविष्णु, नमस्कार करता है।

मिहिरकुल—आओ, मालवमहेश!

[मिहिरकुल धन्यविष्णु को आसन ग्रहण करने का इंगित करता है। धन्यविष्णु बैठता है।]

सेनापति—मगध से सकुशल आगए?

धन्यविष्णु—आगया, क्योंकि मैं वहाँ गुप्त सम्राट् के एक सामंत शासक, अथवा विद्रोही गोप्ता के रूप में उपस्थित नहीं हुआ था, अपितु विश्वविजयी हूण-सम्राट् के राजदूत की स्थिति में पहुँचा था।

मिहिरकुल—उज्जयिनी में कब आए?

धन्यविष्णु—आने के पश्चात् प्रथम कार्य युवराज के दर्शन करने का किया है।

मिहिरकुल—ठीक, मुझ से मिले बिना नींद भी तो नहीं आती आपको। मैं सोचता हूँ यदि सभी धन्यविष्णु होते तो भारतभूमि पर रक्त का ज्वार क्यों आता ?

धन्यविष्णु—मगध-सम्राट् भी धन्यविष्णु बनने को प्रस्तुत हैं।

मिहिरकुल—तात्पर्य ?

धन्यविष्णु—मगध युद्ध नहीं संधि का इच्छुक है।

सेनापति—संधि ?

मिहिरकुल—मगध के इतिहास में इस प्रकार शत्रु से संधि का प्रस्ताव नई बात है।

धन्यविष्णु—कलिंग और मगध का चिर पुरातन विवाद फिर तीव्रतर हो उठा है। मगध विश्व-विजयी हूण और कलिंग के परम पराक्रमी अदम्य खारवेल दोनों से एक साथ संघर्ष नहीं कर सकता।

सेनापति—तब तो हमें तुरन्त ही मगध पर आक्रमण कर देना चाहिए।

मिहिरकुल—मैं तो एरण के युद्ध के पश्चात् ही तुरन्त तीर की तरह पाटलिपुत्र की तरफ प्रयाण करना चाहता था किन्तु सम्राट् ने अग्रसर होने से रोक लिया।

सेनापति—अपनी स्थिति दृढ किए बिना आगे बढ़ना उन्हें उचित नहीं जान पड़ा। उनका शांत चित्त से सोचा हुआ निश्चय आज तक कभी अहितकर सिद्ध नहीं हुआ। कदाचित् उन्होंने समझा कि यदि हूण-सेना का अधिक भाग मालवप्रदेश के बाहर चला गया तो यहाँ विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित हो उठेगी।

मिहिरकुल—और मैं समझता हूँ पिताश्री की शंका सर्वथा निर्मूल भी नहीं है।

धन्यविष्णु—ऐसा सोचने का कारण ?

मिहिरकुल—कारण पूछते हो ? आश्चर्य, आप अपनी ही प्रकृति से अपरिचित है ।

धन्यविष्णु—युवराज ?

मिहिरकुल—सच कहो क्या आप मिहिरकुल का मस्तक नही काटना चाहते ?

धन्यविष्णु—(विस्मित और आशंकित होकर) नही तो ।

मिहिरकुल—तब मुझे कहना पड़ेगा आप मालव नही हैं । आज प्रत्येक मालव मिहिरकुल का मस्तक मांगता है ।

धन्यविष्णु—आप परिहास कर रहे है ।

मिहिरकुल—परिहास कर रहा हूँ ? धन्यविष्णु शासक की आँखें उसके गुप्तचर होते है । राजभवन की प्राचीरो मे घिरा रहकर भी मिहिरकुल को सब ज्ञात हुआ है ?

धन्यविष्णु—आपको क्या ज्ञात हुआ है ?

मिहिरकुल—जो आपको होना चाहिए था । आजकल मालव प्रदेश में स्थान-स्थान पर अभिनीत नाटको को देखा है आपने ? देखते तो जानते कि किस तरह विदेशी सत्ता के प्रति घृणा और विद्रोह के भाव जन-मन में भरे जा रहे हैं । आश्चर्य है आप राजा होकर भी नही जानते—या परोक्ष रूप से आप ऐसा करा रहे है ।

[एक द्वारपाल का प्रवेश और नमनपूर्वक अभिवादन करना ।]

द्वारपाल—एक दर्शनाभिलाषी युवक द्वार पर प्रतीक्षा कर रहा है । उसने यह संकेत प्रेषित किया है ।

[युवराज को एक मुद्रिका देता है ।]

मिहिरकुल—उसे उपस्थित करो ।

[द्वारपाल का प्रस्थान । नेपथ्य से वाद्यों का स्वर सुनाई देता है । कुछ क्षण पश्चात् गीत सुनाई देता है ।]

नेपथ्य में गीत—

चन्द्र मुसकुराया, मुसकाओ
मेरे मन के गीत।
अरे हुआ क्या जग को जीता,
रहा हृदय का घट तो रीता।
जो न रूप की मदिरा पीता
उसका जीवन मृतवत बीता।
हारी उसकी जीत।
चन्द्र मुसकुराया, मुसकाओ
मेरे मन के मीत।

[गीत मिहिरकुल को बेचैन कर देता है। वह उठकर कक्ष में घूमने लगता है। शेष दोनो व्यक्ति भी खडे हो जाते हैं और मिहिरकुल की विकलता को साश्चर्य देखते हैं। गीत का पहला अन्तरा समाप्त होने पर वाद्य कुछ अधिक स्पष्ट हो जाते हैं और नृत्य में बजने वाले घुंघरुओं का स्वर सुनाई देता है।]

मिहिरकुल—यह मधुर स्वर हूण राजमहल के अत पुर में ! मानो सर्प पेटिका में बंदी करने के लिए जादूगरनी महुअर बजा रही है।

[नेपथ्य में गीत का दूसरा अन्तरा प्रारम्भ होता है।]

नेपथ्य में गीत—

छवि ने यौवन-घट छलकाया,
तू क्यों पीने में शरमाया,
कलि का आमंत्रण आया,
तो अलि रस लेने अकुलाया।

रोके रुकी न प्रीत ।
चद्र मुसकुराया, मुसकाओ
मेरे मन के मीत ।

धन्यविष्णु—स्वर तो कचनी का है ।

सेनापति—कचनी !

मिहिरकुल—कचनी, जिसका गीत एरण में अपूर्ण रह गया था और मैंने जिसकी आँखों में चोट खाई हुई सर्पिणी की आँखों-की-सी चमक देखी थी ।

सेनापति—सभवत सम्राट् की सेवा में कचनी मालवपति द्वारा ही प्रेषित की गई है ।

मिहिरकुल—धन्यविष्णु, आप पिताश्री की हत्या का षडयत्र रच रहे हैं ।

धन्यविष्णु—(चौंककर) हत्या ?

मिहिरकुल—वृद्धावस्था में युवती का सामीप्य—कचनी जैसी मालव-प्रदेश की अफीम से भी अधिक नशीली सुंदरी—यह मृत्यु का आलिंगन नही तो क्या है ? मालव शस्त्र हूणो से विजय न पा सके तो इस नाग-पाश का प्रयोग किया है ।

धन्यविष्णु—विश्वास कीजिए कचनी को सम्राट् के कक्ष में मैंने नही भेजा ।

सेनापति—तो वह स्वय प्रयत्न करके पहुँची है—यह तो और भी भयकर बात है ।

मिहिरकुल—भारत में चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने जन्म लिया है, और इस बार मालवप्रदेश में । उनका प्रथम शर धनुष से छूट चुका है और कदाचित् सम्राट् के वक्षस्थल में प्रवेश कर गया है ।

धन्यविष्णु—मैं कचनी का मस्तक युवराज के चरणो में समर्पित करूँगा ।

मिहरकुल—मिहिरकुल के क्रोध की प्यास एक नर्तकी के रक्त से नही बुझेगी । सभवत उसे धन्यविष्णु के हृदय का तप्त रक्त चाहिए ।

धन्यविष्णु—(मस्तक झुकाकर) देवता ! शीशफूल चरणो में चढने

को प्रस्तुत है। शरीरवृत से इस पुष्प को आप असि-हस्त से तोड लीजिए।

मिहिरकुल—मिहिरकुल ने असख्य शीशफूल अपने पैरो से रौंदे है, किन्तु धन्यविष्णु की मस्तक-मणि का वह मान करना चाहता हूँ। मुझे आपका मस्तक नही उसमें बसने वाली समझदारी चाहिए। आप हूणो के होकर रहोगे तो इस समय न आपके मस्तक की आवश्यकता पडेगी न कचनी के मस्तक की। मुझे शर नही शर-सचालक चाहिए, जिसके आदेश से कचनी हूण-सम्राट् के कक्ष में पहुँची है मुझे उसका मस्तक चाहिए।

[गुप्तचर का प्रवेश और नमनपूर्वक अभिवादन करना।]

मिहिरकुल—(धन्यविष्णु से) अच्छा मालवनरेश, आप सम्मानपूर्वक कचनी को उसके भवन में पहुँचा दीजिए और उसकी गतिविधि का निरीक्षण कीजिए। आप मेरे दक्षिण हस्त हैं—याद रखिए मुझे अपने ही हाथ को काटकर न फेंक देना पडे।

धन्यविष्णु—नही युवराज, आपका सेवक अन्तिम क्षण तक आपका सिरस्त्राण बनकर रहेगा।

मिहिरकुल—मैं जानता हूँ—आपने मेरे साथ आकर पाप-पथ पर पैर रखा है, किन्तु अब पुण्य के पथ पर अग्रसर होने का अवसर मैं नही दूंगा। हूणो के मित्र रहकर इस लोक मे वैभव, विलास और प्रभुता भोग सकते हो—परलोक सुधारने की इच्छा करोगे तो हूणो मे विश्वासघात करने के दड की कल्पना आप कर सकते हो। अच्छा आप जा सकते हैं।

[धन्यविष्णु चिंतित और हतप्रभ-सा प्रस्थान करता है।]

मिहिरकुल—(गुप्तचर) अब बोलो।

गुप्तचर—युवराज, समाचार विस्मयोत्पादक है। जन-मार्ग से हमारे

जो शस्त्रास्त्र आ रहे थे वे अज्ञात जल-दस्युओ द्वारा भरु कक्ष के पत्तन पर लूट लिये गए।

मिहिरकुल—क्या हमारे सैनिक नशे में थे ?

गुप्तचर—नही युवराज, उन्होने अन्तिम क्षण तक युद्ध किया—किन्तु अप्रत्याशित आक्रमण को सँभाल न सके। न जाने कहाँ से सहस्रों छोटी-छोटी नौकाओं पर शस्त्रो से सुसज्जित दस्यु आ गए और पोत पर अधिकार कर लिया।

सेनापति—हमारे शस्त्रो का शत्रुओ के हाथ लग जाना अच्छा नहीं हुआ।

गुप्तचर—और स्थल मार्ग से शस्त्रास्त्र लाने वाले हमारे दल को भी दस्युओ ने सौराष्ट्र में सुदर्शन ह्रद के निकट लूट लिया।

मिहिरकुल—सुना सेनापति हम एक जलते हुए वनखड के बीच खडे हैं। सहस्रो कोस तक हमारे लिए एक भी जल-बिंदु नहीं है। आकाश में मेघ की एक भी टुकडी नही है।

सेनापति—किन्तु हूण सैनिको का साहस

मिहिरकुल—क्षीण नही हुआ है—न मिहिरकुल का—किन्तु हमें यह भी तो नही भूलना चाहिए कि हम सुविस्तृत भारत के हृदयेश मालव प्रदेश में वैठे है। हमारी मूल शक्ति से हमारा सम्वन्ध विच्छेद हो गया है। हूण सैनिको का साहस और हमारे किए हुए अत्याचारों का आतक ही अब हमारी पूँजी है और भारतीय नृपतियो का पारस्परिक सघर्ष ही हमारा सरक्षण है।

सेनापति—मै समझता हूँ अब हमें तुरन्त ही मागध सम्राट् से सधि करके उन्हें मित्र वना लेना चाहिए।

मिहिरकुल—हाँ, कुछ समय के लिए। हमें ज्ञात करना है कि वे कौनसी शक्तियाँ है जिन्होने हमें चुनौती दी है। हो सकता है यह कोई वडा सकट न भी हो, और हो सकता है कि नन्ही-सी चिनगारी महानाश की ज्वाला वन जाए। यह सहज शात भारत है जिसके

हृदयस्थल से किसी भी क्षण ससार के गर्व को भस्म करने वाली लपटें उठ पड़ती हैं। भारत को अशक्त समझकर हम उससे नही जूझे, बलवान समझकर ही जूझे हैं, ताकि युद्ध का वास्तविक आनन्द प्राप्त हो।

[एक घबराई हुई परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका—युवराज सम्राट् बेसुध हो गए हैं।

मिहिरकुल—बेसुध! कचनी कहाँ है?

परिचारिका—वह तो पहले ही जा चुकी है।

सेनापति—धन्यविष्णु के साथ?

परिचारिका—नही, वह उनके आगमन के पूर्व ही अपने वाद्यकारो सहित चली गई थी।

मिहिरकुल—सेनापति, कचनी और धन्यविष्णु पर निगाह रखो—वे उज्जयिनी के बाहर न जाने पाएँ। कोई और समय होता तो मैं इनकी बोटी-बोटी करके श्वानो के आगे फेंक देता—लेकिन ऐसा करने से षडयन्त्र का सूत्र नही मिलेगा। (गुप्तचर से) जाओ गुप्तचर। तुम्हे कर्तव्य समझाना न होगा। हमारे आस-पास, ऊपर-नीचे दशो दिशाओ में विषधर रेंग रहे हैं। सेनापति आप अपने कार्य पर जाइए—मैं पिताजी की चिकित्सा का प्रबन्ध करता हूँ।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान—वन-प्रदेश में एक मैदान। समय—प्रभात। शाल की एक ऊँची वल्ली भूमि में गड़ी हुई है जिसके शीर्ष पर एक मत्स्य टँगा हुआ है। वल्ली के तल-प्रदेश में एक बड़े और चौड़े पात्र में तेल भरा हुआ है जिसमें मत्स्य का प्रति-

विम्ब दृष्टिगोचर होता है। बल्ली इतनी ऊँची है कि उसके शीर्ष पर बँधे मत्स्य को दर्शक नहीं देख सकते। मदाकिनी और विष्णुवर्धन का प्रवेश। दोनो धनुष-बाण लिये हुए है।]

विष्णुवर्धन—यह क्या द्रौपदी-स्वयवर का आयोजन किया है ?

मदाकिनी—नही, आज मे आचार्य द्रोणाचार्य की भाँति अपनी शिष्याओ की परीक्षा ले रही हूँ कि वे लक्ष्यवेध मे कितनी पारगत हुई है।

विष्णुवर्धन—सभवत स्नेह में मत्स्य-प्रतिबिम्ब देखकर लक्ष्य-साधन करना होगा।

मदाकिनी—मै सिद्ध करना चाहती हूँ कि जिस कौशल के लिए गांडीव-धारी अर्जुन को द्रौपदी जैसी अनिंद्य सुदरी पुरस्कार में प्रदान की गई थी वह आज की नारियो के लिए साधारण-सी बात है।

विष्णुवर्धन—हाँ, लक्ष्य-बेध में पुरुष की अपेक्षा नारी सहज ही अधिक सफल होती है।

मदाकिनी—वाह भैया! लोग समझते है जनेन्द्र विष्णुवर्धन शुष्क, कठोर प्रस्तर-खड है किन्तु मै देखती हूँ ज्यो-ज्यो सग्राम-महायज्ञ का प्रारभ निकट आ रहा है त्यो-त्यो इस प्रस्तर-खड से रस-स्रोत प्रवाहित होने को अधिकाधिक व्याकुल होता जा रहा है। सभवत सुहासिनी का शर अचूक बैठा है।

विष्णुवर्धन—हाँ, बहन! किन्तु सैनिक के हृदय पर अचूक लक्ष्य-बेध करना ही तो बहुत बडी चूक है। सैनिक रूपी पक्षी ऐसा निर्लज्ज होता है कि वह शर-विद्ध होकर भी गगन-विहारी बना रहता है। न उसे अपने हृदय से बाण को बाहर निकाल फेकने का अवकाश है—न अपने वधिक की झोली में आ बैठने का और न मृत्यु का आलिगन करने का।

मदाकिनी—पक्षी ज्यो-ज्यो आकाश में अधिक दूर उडता है वधिक का उसे प्राप्त करने का निश्चय भी अधिक दृढ होता जाता है। वह भी

उन्मत्त होकर शर-संधान करता है।

विष्णुवर्धन—किन्तु, मुझे विश्वास है कि मेरा वधिक इस तुच्छ प्राणी का मोह छोड़कर देश के शत्रुओं की ओर ध्यान देगा।

मंदाकिनी—ऐसा तो वह तभी कर सकता है जब उसे विश्वास हो जाए कि उसका पंछी उसके प्रीत-पींजरे में अपना स्वर्ग बसा चुका है।

विष्णुवर्धन—किंतु, बहिन क्या पींजरे में, चाहे वह स्वर्ग का है चाहे प्रीत के अदृश्य तंतुओं का, कभी स्वर्ग बस सकता है! मानलो आज संपूर्ण भारत हूण-सत्ता के विराट पींजरे में बंदी हो जाए तो क्या कोई भारतवासी पराधीनता के पींजरे को स्वर्ग समझ सकेगा।

मंदाकिनी—और भैया यदि हूण भारतीय बन जाएँ?

विष्णुवर्धन—तब उसके हृदय में भारतीयों पर प्रभुता स्थापित करने की आकांक्षा भी समाप्त हो जाएगी। उस दिन स्वाधीनता का प्रश्न समाप्त हो जाएगा। जिस मिट्टी से हमारा तन बना है उसी मिट्टी को जब तक वे अपनी माँ नहीं मानेंगे तब तक हमारी उनसे संधि नहीं हो सकती।

मंदाकिनी—किन्तु भैया, कुषाण सम्राट् वाझेष्क पुत्र महाराज राजाधिराज देवपुत्र कैसर कनिष्क भी तो विदेशी ही थे। उनके मान को रखने के लिए भारतीय योद्धाओं ने चीन की भूमि में अपना रक्त क्यों सींचा था?

विष्णुवर्धन—क्योंकि कुषाण भारतीय संस्कृति के प्रभाव से भारतीय बन गए थे—अभिन्न होगए थे। उन्होंने जिन हाथों से भारतीयों के विरुद्ध शस्त्र उठाए थे उन्हीं हाथों ने भारतीय आचार्यों के चरण छूकर अपनी प्रभुता के मद को विसर्जित कर दिया था।

[वत्स का कंचनी का हाथ पकड़े हुए प्रवेश। कंचनी उन्हीं बहुमूल्य वस्त्राभूषणों में है जिन्हें वह तोरमाण के कक्ष में धारण कर उसका मनोरंजन कर रही थी। वत्स भी कंचनी के

वाद्यकार के वेश में है। वत्स का कचनी का
हाथ पकडे हुए आना मदाकिनी को अखरता है।
उसकी त्योरियां चढती हैं।]

मदाकिनी—कवि-सम्राट् वत्स भट्ट! नर्तकी के वाद्यकार के रूप में! वधाई है इस उत्कर्ष के लिए।

वत्स—वधाई देती हो या ईर्ष्या करती हो।

मदाकिनी—मै प्रसन्न होकर वधाई देती हूँ।

कचनी—क्षमा करना देवि, नयनो की विजली प्रसन्नता का सकेत नही देती।

मदाकिनी—किन्तु मेरी आंखो में नर्तकी से प्रतिस्पर्धा करनेवाली ज्वाला भी नही है।

कचनी—नर्तकी किसी भद्र महिला से प्रतिस्पर्धा करने का सम्मान भी नही पा सकती।

मदाकिनी—क्योकि वह अनायास ही भद्र महिलाओ के सुख-स्वर्गो में आग लगाने की क्षमता रखती है।

विष्णुवर्धन—वहन, तुम अतिथि पर वरस क्यो पडी हो?

मदाकिनी—क्यो भैया, हूण भी तो भारत में अतिथि ही हैं—अनाहूत, अनाचारी। और इस नर्तकी रूपी अनाहूत, अनाचारी, निर्दय अतिथि ने भी अप्रत्याशित आक्रमण किया है।

वत्स—डरो नही, मदाकिनी, आक्रमणकारी सधि करना चाहता है।

मदाकिनी—और तुम इस आक्रमणकारी अतिथि के राजदूत हो?

विष्णुवर्धन—(वत्स से) कौन है यह?

वत्स—कचनी!

मदाकिनी—यह तो उसकी साज-सज्जा पुकार-पुकारकर कह रही है।

वत्स—किन्तु, अब कचनी तुम्हारी सेना की सैनिका वन गई है।

मदाकिनी—सैनिका! शस्त्र-सचालन जानती है?

वत्स—सभवत आचार्य के समान ही।

मंदाकिनी—तो वह प्रतिविम्ब में देखकर मत्स्य का लक्ष्य-वेध कर परीक्षा दे ।

कंचनी—उत्तीर्ण होने पर पुरस्कार भी मिलेगा या हाथ में धनुष-बाण देकर रणभूमि में प्राण देने की आज्ञा मिलेगी ?

मंदकिनी—पुरस्कार भी पाओगी ।

कंचनी—क्या ?

मंदाकिनी—जो तुम्हारे हृदय को प्यारा है ।

कंचनी—जो तुम्हारी आँखो का तारा है ।

मंदाकिनी—(अपने हाथ का बाण कंचनी की तरफ बढाकर) लो, बाण की नोक से मेरी आँखो के तारे को निकाल लो, अंधी कर दो मुझे । मेरे जीवन की ज्योति छीन लो । वेध डालो मेरे हृदय को । लूट लो मुझे । बर्बर हूणो की भाँति अपने यौवन के उद्धत अश्व पर आसीन होकर आओ—रौंध डालो मेरी लाछित काया का—और चली जाओ हृदय-देवता के हृदय-मन्दिर मे नृत्य करने ।

[मंदाकिनी का मुख उत्तेजना से रक्त-वर्ण हो उठता है । उसकी आँखों में, रोकने का प्रयत्न करने पर भी, एक-दो बूंदें जल की छलक आती है]

विष्णुवर्धन—मंदाकिनी, तुम मेरी बहन हो । तुमको···

मंदाकिनी—भैया, तुमने माता जी की आकाश-चुम्बी लपटें देखी थीं—उनसे भी कहीं अधिक भयंकर लपटें मेरे हृदय में जल रही है ।

वत्स—मंदाकिनी !

मंदाकिनी—तुमने दुर्मद गज की भाँति मेरी आशा-लता को जड़ से उखाड़ डाला है ।

वत्स—किन्तु, मैं तो तुमसे परिहास करने के लिए कंचनी का हाथ

पकडे हुए यहाँ आया था ।

कंचनी—परिहास करने के लिए। भद्र युवक तुमने कचनी के जीवन के साथ खेल किया है। प्रेम का अभिनय करना रूप-जीवा की साधारण जीवन-चर्या है किन्तु अपनी धन-वैभव-सुख-साधन-सम्पन्न अट्टालिका को छोडकर अपने हाथ मेंहदी के स्थान पर रक्त से रगकर जब मैं अज्ञात पथ पर नक्षत्रो की उपहास करती हुई दृष्टि की उपेक्षा करके तुम्हारा हाथ पकडकर चली आई–तब मैंने परिहास किया था। जीवन मे पहली बार मैंने वास्तविक प्यार को तुम्हारी आँखों मे चमकते हुए देखा था—और अपने हृदय मे उमडते हुए अनुभव किया था। यह सब परिहास था तो मेरा जीवन भी परिहास है—मै जहाँ से आई हूँ—वही चली जाऊँगी ।

[जाने लगती है किन्तु वत्स मार्ग रोक लेता है]

वत्स—निर्दय न बनो अपने प्रति, मेरे प्रति, और अपने देश के प्रति। तुम सौन्दर्य में उर्वशी को लज्जित करने वाली हो—और मेरी आँखो के छवि-मधु-लोभी भ्रमरो ने तुम्हारे सौन्दर्य के आकर्षण का अनुभव न किया हो ऐसी भी बात नही है, लेकिन, कचनी, मैंने तुम्हारे कठ में—तुम्हारे चरणो की गति में, भारती के दर्शन कर उसके चरणो में अपने हृदय का पुष्प अर्पित किया है। तुम अपने स्थान से स्खलित न हो, देवि !

विष्णुवर्धन—(मदाकिनी) सुनती हो बहन, यह है मेरे मित्र वत्स का रूप। माँ ने तुम दोनो को चिरसगी बनाने की इच्छा कुछ सोच-समझकर ही प्रकट की थी ।

मंदाकिनी—क्षमा करो, भैया ! मै नारी-सुलभ दुर्वलता

विष्णुवर्धन—(बात काटकर) दुर्वलता लज्जा की वस्तु नही है, बहन ! दुर्वल मै भी हूँ–दुर्वल वत्स भी है–दुर्वल तुम भी हो–

दुर्बल कचनी भी है । हम किसी में देवत्व की खोज करेंगे तो हमारे हाथ दुख और निराशा ही लगेगी । हम मनुष्य को प्यार करेंगे तो हमे उसकी दुर्बलता को भी प्यार करना पडेगा। सुहासिनी मेरी दुर्बलता है, वत्स तुम्हारी, कचनी वत्स की और हम सबकी दुर्बलताएँ ही हमारा बल है । गगा-यमुना के पथ बदले जा सकते है किन्तु क्या प्रीत-सरिता का मार्ग अवरुद्ध किया जा सकता है ?

कचनी—किन्तु, वह सरस्वती की भाँति अत सलिला तो हो ही सकती है । मेरा प्रेम अत सलिला बनकर मेरे ही प्राणो मे प्रवाहित होगा । वत्स मेरी दुर्बलता है—उसकी उपस्थिति अत' सलिला मे उद्रेक न ले आए इसलिए मै चली ही जाऊँगी ।

वत्स—चली ही जाओगी—कहाँ उज्जयिनी, किन्तु जानती हो वहाँ तोरमाण का अत बुलाने वाली कचनी का कैसा स्वागत होगा ?

विष्णुवर्धन—क्या तोरमाण की मृत्यु हो गई ?

वत्स—हाँ, इसीलिए तो मुझे कचनी का वाद्यकार बनना पडा था—किन्तु यह अभिनय मदाकिनी को इतनी पीडा पहुँचाएगा इसकी मैने कल्पना भी नही की थी ।

विष्णुवर्धन—कचनी, तुम ने वास्तव मे पुरस्कार पाने योग्य कार्य किया है ।

मंदाकिनी—तो दे डालो अपनी सबसे प्रिय वस्तु—अपने मित्र को—इस परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थिनी को । रण-भेरी के स्थान पर यहाँ शहनाई बजने दो ।

विष्णुवर्धन—जब तक मेरे प्राणो में रणभेरी बज रही है—मेरे साथियो को भी शहनाई के स्वर सुनने मे वचित रहना पडेगा । तुमने महाभारत में पढा है कि आचार्य द्रोण ने मत्स्य के नेत्र का लक्ष्यवेध करते हुए अर्जुन से जब पूछा कि तुम्हे क्या-क्या दिखाई देता है, तब उन्होने कहा था—मुझे केवल मत्स्य की आँख दिखाई

देती है। हम इधर-उधर भटक अपने लक्ष्य की ओर देखेंगे।

कंचनी—धन्य हो जनेन्द्र! आपकी जितनी प्रशसा वत्स ने की थी उससे कही महान् है आप। सूर्य की किरणें आपकी चितवन से लज्जित हैं—समुद्र का गर्जन आपकी वाणी के सम्मुख सकुचा रहा है। तथागत भगवान् ने वैशाली की वेश्या आम्रपालि का उद्धार किया था—आपने उन्हीं की भाँति उज्जयिनी की कचनी को कचन बना दिया।

विष्णुवर्धन—मुझे लज्जित न करो, कचनी। मनुष्य के हृदय में देवता भी है—और राक्षस भी—इसीलिए तो वह मनुष्य है। कोई व्यक्ति किमी कारण, प्रलोभन या परिस्थिति के वश पतन के पथ पर चला गया तो क्या वह सदा के लिए सुपथ पर सम्मानपूर्वक आने का अधिकार खो बैठा है। जिस दिन हमारा समाज इतना अनुदार हो जायगा उसी दिन समझ लो उसमें विनाश के कीटाणु जन्म ले लेंगे।

वत्स—बधु! मै भी नही समझ सका था कि तुम इतने उदार हो।

विष्णुवर्धन—उदारता ही तो भारतीय सस्कृति का बल है—जिसने यवन, शक, कुषाण सबको अपने अचल के नीचे ले लिया। एक दिन हूण भी दुराग्रह छोडकर वही करेंगे जो उनसे पहले आने वाले विदेशी कर चुके हे। जब तक उनमें इतनी सद्बुद्धि नही आती, हमें जननी जन्मभूमि का सम्मान रखने के लिए शस्त्रों का सहारा लेना ही पडेगा। आज तुम बहुत दिनो बाद आए हो—तुम्हें बहुत कुछ बताना है—मेरे साथ आओ—तुम भी मदाकिनी, तुम्हारी शिष्याओ के आने में अभी विलम्ब है। तुम भी कचनी।

[सब का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[समय—रात्रि के द्वितीय प्रहर का प्रारंभ । स्थान—उज्जयिनी की एक प्रसिद्ध मधुशाला के बाहर की सीढियां । जयदेव और धर्मदास मद्यपो की भांति अस्थिर डगमग पग रखते हुए आते है ।]

जयदेव—(लडखडाते-से स्वर में) मधुशाला का स्वामी कहता है तुमको हारहनूज सुरा नही देंगे । नही देंगे ! क्यो नही देंगे ? नही देना है तो किसी को न दें । उस हूण सैनिक के पात्र में मधुवाला ने मेरे सामने हारहनूज ढालकर दी । मै उस हूण का मस्तक तोड दूंगा ।

[कुछ पयी एकत्रित हो जाते है ।]

धर्मदास—(जयदेव की भांति लडखडाते हुए स्वर में ही) उसका मस्तक तो मै भी तोडना चाहता था किन्तु मैंने सोचा—उसके घर में पत्नी होगी—वह युवक है—अत उसकी पत्नी भी युवती होगी—सुहाग लुट जाएगा । युवती स्त्री की मांग में सिंदूर न हो तो उसमें और श्रीफल मे अन्तर ही क्या रह जाए ?

जयदेव—वाह, वाह युवती के मस्तक की उपमा श्रीफल से देकर तुमने तो कालिदास की नगरी में कालिदास को ही प्रभाहीन कर दिया । किन्तु ••

[सीढियों पर बैठ जाता है ।]

धर्मदास—किन्तु क्या ?

जयदेव—श्रीफल की खोपटी फोडने से तो सुस्वादु खाद्य-पदार्थ की उपलब्धि होती है, किन्तु नारी की खोपडी फोडने से क्या मिलेगा ?

धर्मदास—(जयदेव के पास बैठकर) जियो भैया, जियो ! क्या जिज्ञासा है ! किसी शास्त्र में इसका समाधान नही मिलेगा । स्वयं ही अन्वेषण करना होगा । ह ह ह नारी की खोपड़ी ?

जयदेव—ह ह नारी की खोपडी, क्या वह ऐसी पिटारी है जिसे खोल-कर देखा ही नही जा सकता । अजी महाराज, हाथ कगन को आरसी की क्या आवश्यकता । शास्त्रो में नारी की खोपडी के सबध में अध्ययन करें मूर्ख लोग, हम तो उसकी खोपडी को फोड-कर ही देखेंगे ।

[जयदेव उठकर मधुशाला में घुसने लगता है किन्तु धर्मदास पकड लेता है । कुछ और व्यक्ति जमा हो जाते हैं ।]

धर्मदास—किस नारी की खोपडी फोडोगे ?

जयदेव—मधुबाला की, जो भाँति-भाँति की मदिराओ की सुगधो से और मद्यपो की भाँति भाँति की नशीली भावनाओ से भरपूर है ।

धर्मदास—मित्र, मधुबाला की खोपडी भाँति-भाँति की मदिराओ की गध से परिपूर्ण है तो खोपडी के रक्त में भी मदिरा से अधिक नशा होगा ।

जयदेव—अर्थात् मधुबाला मदिरामयी सुराही है ।

एक दर्शक—(दूसरे दर्शक से) और ये दोनो मदिरा के कुप्पे हैं । अभी नाली में लुढकते दृष्टिगोचर होगे ।

जयदेव—क्या कहा ? (दर्शक के मुँह पर पूरे बल से थप्पड जडता हुआ) मूर्ख, मद्यप !

[पहला दर्शक गाल टटोलता हुआ सक्रोध देखता है, एक दूसरा दर्शक जयदेव को पक-डता है, किन्तु धर्मदास एक झटके से दूसरे दर्शक को जयदेव से प्रथक् करता है ।]

धर्मदास—क्यो भाई, इसमे क्यो उलझते हो ?

दूसरा दर्शक—इसने इस पर हाथ क्यो उठाया ?

धर्मदास—इसने हाथ नही उठाया । न मानो तो जिसके थप्पड लगा है उसी से पूछो ।

दूसरा दर्शक—उससे क्या पूछें, हमने अपनी आँखो से देखा है।

धर्मदास—क्या देखा है ?

दूसरा दर्शक—यही कि दाहिने हाथ ने भरपूर

धर्मदास—(बात काटकर) दाहिने हाथ से। जब तुम मानते हो कि इसके दाहिना हाथ है, तो वाम हस्त भी होगा।

दूसरा दर्शक—हाँ, है—दोनो हाथ है।

धर्मदास—क्या मदिरा के कुप्पे के हाथ होते है ?

दूसरा दर्शक—क्या तात्पर्य ?

धर्मदास—तुम्हारा मित्र हमें मदिरा के कुप्पे कहता है। हम मदिरा के कुप्पे है—तो हमारे हाथ नही है—हाथ नही है तो हाथ से मारा ही नही गया।

जयदेव—और हम मदिरा के कुप्पे नही है तो इसने हमे ऐसा कहा क्यो ?

धर्मदास—हाँ दोनो कहा क्यो ? (जोर से) ओ न्याय-मूर्ति वीर विक्रमादित्य की नगरी मे रहने वालो बतलाओ—न्याय करो, इस दो पाँव के जन्तु ने जिसकी गर्दन पर मनुष्य की खोपडी रखी हुई है मनुष्य को मदिरा का कुप्पा कहते है।

जयदेव—कुप्पा निर्जीव होता है, अर्थात् इसने मनुष्य को निर्जीव कर दिया है—निर्जीव कर दिया है—प्राण ले लिये है। प्राण लेने का दण्ड प्राण-दण्ड के अतिरिक्त क्या हो सकता है। ले चलो इसे वध-शाला में।

[कोलाहल सुनकर मधुशाला का स्वामी आता है।]

मधुशाला का स्वामी—यह कैसा कोलाहल है ?

जयदेव—कोलाहल, कोलाहल ! कैसा कोलाहल किस वस्तु की संज्ञा है।

धर्मदास—कोलाहल हलाहल का भाई है।

मधुशाला का स्वामी—क्या दो चुल्लू में उल्लू हो गए !

धर्मदास—मधुशाला के स्वामी, तुम मनुष्य को उल्लू बनाने का व्यवसाय करते हो। अच्छा, तो सारे प्रकाशित दीपों को बुझा दो।

जयदेव—हाँ बुझा दो। और आकाश में चद्रमा को भी हटा दो।

मधुशाला का स्वामी—क्यो ?

धर्मदास—अधकार होने पर तुम दिखाई पडे तो हम समझेंगे हम उल्लू है और नही दीखें तो समझेंगे तुम उल्लू हो।

मधुशाला का स्वामी—अच्छा बाबा, उल्लू मैं ही हूँ। अब तो घर जाओ। घरवाली प्रतीक्षा करती होगी। अधिक पी लेने पर नारी के अचल के नीचे ओवे मुंह पड जाना चाहिए।

जयदेव—तब तो हमें नारी की खोज करनी पडेगी।

[दर्शक एक-एक करके विदा हो जाते है।]

धर्मदास—खोजते कहाँ जाएँ—मधुशाला तो नारियो का भडार है—वह लो एक मधुबाला आ ही रही है।

[मधुबाला के वेश में उमा का प्रवेश।]

उमा—(मधुशाला के स्वामी से) हूण सैनिक द्यूत-क्रीडा-भवन के द्वार खुलवाना चाहते है।

जयदेव—(उमा के पास जाकर) जरा बैठ जाओ न मधुबाले, मैं तुम्हारे चरणो में ओवे मुंह गिर जाऊँ—तुम अपने अचल में मुझे छुपालो।

उमा—क्या निश्शुल्क खोपडी के केशो का कर्तन कराना है।

धर्मदास—नो यह मधुशाला नही केश-कर्तनालय है। जहाँ खोपडी

जयदेव—खोपडी । मै तो भूल ही गया था खोपडी। मधुबाला की खोपडी।

मधुशाला का स्वामी—तुम जाते हो या अपनी खोपडी खुलवाकर ही जाओगे। अभी हूण सैनिक आकर

जयदेव—हूण सैनिक ! बुझे हुए अगारे—उनके दिन गए, मधुस्वामी की शाला ! आज ही मुझ से ज्योतिपाचार्य वाराहिमिहर ने कहा

था कि आकाश में नए नक्षत्र का उदय हुआ है जो हूणों के लिए शनि से भी अधिक सर्वनाशी है। समझे ! यह भविष्य-वाणी मिथ्या नहीं हो सकती।

नेपथ्य से आवाज—ओ मधुशाला के स्वामी ! कहाँ मर गया है ? आता है या तेरी खोपडी की परीक्षा की जाए।

धर्मदास—जाओ, अपनी खोपडी की कुशल मनाओ।

[मधुशाला का स्वामी जाने लगता है—उसके पीछे उमा भी जाने का अभिनय करती है, किन्तु जयदेव पकड लेता है।]

उमा—हाय राम, बचाओ मुझे, इन राक्षसों से।

मधुशाला का स्वामी—(जाते-जाते) मैं अभी सैनिकों को भेजता हूँ।

[मधुशाला के स्वामी का प्रस्थान ।]

उमा—बस, अब एक क्षण भी यहाँ ठहरना ठीक नहीं, नहीं तो तुम्हें अपनी मधुबाला से हाथ धोना पडेगा। हूण गुप्तचरों ने हमारी योजना का पता लगा लिया है। सैनिकों की बातों से ज्ञात हुआ है कि कल हूण सेना प्रस्थान करेगी इसलिए मधुशालाएँ, द्यूत-क्रीडागार प्रमोद-भवन आदि हूण सैनिकों से भरे हुए हैं।

जयदेव—तो चलो मधुबाले आज तुम्हारी कपाल-क्रिया कर तुम्हारे मस्तिष्क में जितनी मदिरा की गंध जमा हो गई है उसे उज्जयिनी के उन्मन पवन को निश्शुल्क दान कर दूँगा। चलो !

[उमा की चोटी पकडकर घसीटता है। एक पथिक जो उसी क्षण वहाँ आया है बचाने आता है। धर्मदास तलवार खींचता है। दर्शक ठिठक जाता है।]

धर्मदास—मधुबाला किसी की माँ नहीं है, किसी की कन्या भी नहीं, सहोदरा भी नहीं। समझे ?

[धर्मदास दर्शक के कानों में कुछ कहता है।

उसके पश्चात जयदेव, धर्मदास और उमा चले जाते हैं। मधुशाला का स्वामी तीन-चार हूण सैनिकों के साथ प्रवेश करता है।]

मधुशाला का स्वामी—(दर्शक से) यहाँ मधुबाला और दो मद्यप थे।

दर्शक—मद्यप बेचारी को इस तरफ घसीट ले गए हैं।

[दर्शक उन्हें विपरीत दिशा बता देता है। दर्शक की निर्देशित दिशा में हूण सैनिक और मधुशाला के स्वामी का प्रस्थान, दूसरी दिशा में दर्शक का।]

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[समय—रात्रि। स्थान—दशपुर का सूर्य-मन्दिर। देवल के पट बन्द हैं, किन्तु भक्त जन के निमित्त निर्मित विशाल कक्ष खुला हुआ है। बीचो-बीच दीप स्तम्भ है जिस पर अनेक दीप-दान बने हुए हैं, जिस पर दीप जल रहे हैं। मुख्य मन्दिर, जिसमें प्रतिमा है, के द्वार पर एक बड़ा घण्टा है। विष्णुवर्धन और नगर-श्रेष्ठी हेमचन्द्र का प्रवेश। विष्णुवर्धन इस समय भी सैनिक वेश में है और हेमचन्द्र लम्बी, अँगरखा और अधोवस्त्र धारण किए हुए हैं। कण्ठ में बहुमूल्य मुक्ताओं की माला है।]

विष्णुवर्धन—नगर-श्रेष्ठी हेमचन्द्रजी, प्रतिवर्ष वसन्तोत्सव हमारे शिव मन्दिर के उद्यान में मनाया जाता था, किन्तु आज सूर्य-मन्दिर में मनाया जा रहा है, जानते हो क्यों ?

हेमचन्द्र—मन की बात जान सकूँ ऐसा योगी तो मैं हूँ नहीं ?

विष्णुवर्धन—संभवतः आप यह भी नहीं जानते कि मैंने उत्सव प्रारम्भ होने से कुछ काल पूर्व आपको क्यों बुलाया है ?

हेमचन्द्र—मैं कह चुका हूँ कि मन की बात जानने की विद्या मैंने नही पढी।

विष्णुवर्धन—नही पढी यही तो महान् अपराध किया आपने श्रेष्ठी शिरोमणि। इस अपराध का दण्ड आपको भोगना पड़ेगा।

हेमचन्द्र—दण्ड?

विष्णुवर्धन—दण्ड ऐसे कोमल और प्रिय हाथो से मिलेगा कि आप आश्चर्य-चकित हो जाएँगे।

[विष्णुवर्धन ताली बजाता है। और एक सुकुमार युवती प्रवेश करती है। उसके एक हाथ में नगी तलवार और एक में रज्जु है।]

विष्णुवर्धन—पहचाना।

हेमचन्द्र— (युवती से) पुत्री!

युवती—मैं भारत माँ की पुत्री हूँ।

विष्णुवर्धन—जानते हो, आप जैन हैं और आपकी पुत्री ने हाथ में तलवार पकड़ी है।

हेमचन्द्र—सभवत वसतोत्सव मे अभिनय करने के लिए यह रूप बनाया है।

विष्णुवर्धन—भारत की भद्र महिलाएँ नाट्य अभिनयो में भाग नही लेती।

हेमचन्द्र—आपके सखा वत्स ने इस नियम को अनियमित कर दिया है। उसके द्वारा सयोजित नाटको मे अनेक भद्र महिलाएँ भाग ले रही हैं। मेरी पुत्री भी यदि भाग ले तो आश्चर्य की बात नहीं।

विष्णुवर्धन—जिस महान् नाटक का सूत्रधार मैं हूँ—वत्स के छोटे-छोटे अभिनय उसके दृश्य मात्र हैं। उस बड़े नाटक में आपको भी भाग लेना पड़ेगा।

हेमचन्द्र—मुझे रगमच पर आना पड़ेगा।

विष्णुवर्धन—निश्चय ही।

हेमचन्द्र—रगमंच पर मैं कदली-स्तम्भ की भाति काँपने लगूँगा।

आपको भी क्या परिहास सूझा है ?

विष्णुवर्धन—नगर-श्रेष्ठी, यह परिहास नही है। मै भगवान् भास्कर के मन्दिर में खडा होकर पूर्ण गम्भीरता से कह रहा हूँ कि आप मेरी आज्ञा मानने को प्रस्तुत न होगे तो आज की पूजा के फूलो में एक आपका मस्तक होगा और रोली के स्थान पर आपका रक्त होगा।

हेमचन्द्र—ह ह ह (हँसता है) यह तो परिहास की पराकाष्ठा है।

विष्णुवर्धन—बाँध लो इस देश-द्रोही नगर-श्रेष्ठी को।

युवती—(हेमचन्द्र के निकट पहुँचकर) हाथ बढाइए, अन्यथा मुझे बल-प्रयोग करना पडेगा।

हेमचन्द्र—बेटी।

युवती—मैं कह चुकी हूँ, मै जननी भारत की सैनिका हूँ।

हेमचन्द्र—तो तुम नर-बलि, वह भी अपने पिता की, देने में सकोच नही करोगी ?

युवती—जो मस्तक हमारे नेता के आदेश की अवहेलना करेगा उसे भू-लुण्ठित होना ही पडेगा।

हेमचन्द्र—अपनी माँ से भी पूछा है तूने ?

युवती—मै कह चुकी हूँ कि मेरी जननी भारतभूमि है।

हेमचन्द्र—वि णुवर्धन, मुझे कुछ सोचने-समझने का अवसर दो।

विष्णुवर्धन—(युवती से) ठहरो।

(युवती हेमचन्द्र के पास से हटकर विष्णुवर्धन के निकट आ जाती है।)

विष्णुवर्धन—(हेमचन्द्र से) क्या सोचना-समझना चाहते हो ?

हेमचन्द्र—यही कि मेरी गर्दन पर मस्तक है या नही जिसे मेरी पुत्री काटना चाहती है।

विष्णुवर्धन—नही है तो चलने दीजिये तलवार। जो वस्तु है नही, उसके कटने का भय भी क्या ?

हेमचन्द्र—किन्तु बिजली-सी चमकती हुई और साँप की जिह्वा-सी लपलपाती हुई असि को देखकर भय तो होता ही है।

विष्णुवर्धन—तब मान लेना चाहिए कि आपके धड पर मस्तक है—इस मस्तक की भारतभूमि को आवश्यकता है। यह आपकी इच्छा पर निर्भर है कि आप मस्तक को धड से सलग्न देते है या पृथक्।

हेमचन्द्र—मै तुम्हारी इच्छा के आगे मस्तक झुकाता हूँ।

विष्णुवर्धन—मेरी इच्छा के आगे या अपनी पुत्री की तलवार के आगे।

हेमचन्द्र—मेरी पुत्री का व्यक्तित्व और अस्तित्व तुम्हारी इच्छा के महासमुद्र में समा गया है।

विष्णुवर्धन—मै चाहता हूँ आपका व्यक्तित्व और अस्तित्व भी अपनी सुपुत्री का अनुकरण करे।

हेमचन्द्र—मेरा कर्तव्य ?

विष्णुवर्धन—आप स्वतन्त्र-भारत-सघ के सन्निधाता है।

हेमचन्द्र—सम्पूर्ण भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है कहाँ ?

विष्णुवर्धन—जन-मन स्वतन्त्र हो जाए तो देश को स्वतन्त्र होने में कितना समय लगता है ?

हेमचन्द्र—भावी स्वतन्त्र भारत-सघ का वर्तमान कोष कहाँ है, जिसका सन्निधाता मुझे बनना है।

विष्णुवर्धन—पहले आप अपने ही भडार से प्रारम्भ कीजिए।

हेमचन्द्र—उसका कोषाध्यक्ष तो मै हूँ ही।

विष्णुवर्धन—किन्तु आप अभी तक लोभवश उसके स्वामी और सन्निधाता बने रहे, किन्तु अब कर्तव्यवश उदारतापूर्वक उनका स्वामी देश को बना दीजिए और देश की इच्छा से उनके सन्निधाता आप बनिए।

हेमचन्द्र—अर्थात्

सिष्णुवर्धन—उसका उपयोग देश-हित में होगा।

हेमचन्द्र—अपनी सन्तान के लिए मे

विष्णुवर्धन—(**युवती की ओर इगित करके**) यह है आपकी सतान, जो देश की सन्तान बनकर सुख-दुख देश के भाग्य में विलीन कर चुकी है।

हेमचन्द्र—इस भाँति आपने कितने श्रेष्ठियों की सन्तानो और सम्पत्तियों पर डाका डाला है।

विष्णुवर्धन—भारत के प्रत्येक श्रेष्ठी का धन-द्रव्य-भडार सन्निधाता के अधिकार मे है। आप आज्ञा कीजिए कि अमुक श्रेष्ठी के भडार से इतना द्रव्य चाहिए फिर देखिए आपके (**युवती की ओर इगित करके**) ऐसे सैनिक उसे प्राप्त करते हैं या नहीं।

हेमचन्द्र—तो क्या वास्तव में भारत में अराजकता का सूत्रपात हो गया हूँ।

विष्णुवर्धन—नहीं श्रेष्ठी महोदय, यह अराजकता नही, स्व-राज्य का उप-काल है। जिस प्रकार सूर्य की किरणो को थोडे से व्यक्ति वन्दी बनाकर नही रख सकते उसी प्रकार उदार पृथ्वी माता द्वारा प्रदत्त धान्य-द्रव्य-रत्नादिक को कोई वन्दी बनाकर नही रख सकेगा। बोलो नगर-श्रेष्ठी, लक्ष्मी के पैरों में साँकल डालना चाहते हो या उन्हें स्वच्छन्द नृत्य करने दोगे।

हेमचन्द्र—जब मै अपनी पुत्री को भी स्वच्छन्द विचरण करने से न रोक सका तो चचला लक्ष्मी के चिर-चचल चरण-कमलो मे वेडियाँ कैसे डाल सकूँगा। समुद्र आकाश से पानी पाता है—आकाश समुद्र से, कौन किसे देता हैं, कौन किससे पाता है, इसे कौन जानता है। प्रवाह का नाम जीवन है। आप मेरे घर में मृतवत पडी हुई लक्ष्मी को जीवन दोगे तो मुझे प्रसन्नता होगी। आप लोग लक्ष्मी को भी नचाओ, सरस्वती को भी नचाओ, महेश को भी नचाओ, गणेश को भी नचाओ, देवो को भी नचाओ, मानवो का भी नचाओ।

[इसी समय वत्स, सुहासिनी, मंदाकिनी और कंचनी का प्रवेश। कंचनी पांवों में घुंघरू बांधे हुए नृत्य करने की सम्पूर्ण साज-सज्जा से सज्जित है। वत्स मृदंग सम्हाले हुए है। मंदाकिनी के पास वीणा है। सुहासिनी बांसुरी लिये हुए है। कंचनी के हाथ में एक स्वर्ण-थाल भी है जिसमें अप्रज्वलित दीप भी है।]

वत्स—उत्सव का समय हो गया है, नागरिक जनेन्द्र के आदेश की प्रतीक्षा में है।

[विष्णुवर्धन घंटा-ध्वनि करता है। पुजारी आकर देवल के पटो का उद्घाटन करता है। उपस्थित जन सूर्य-प्रतिमा को नमन करते है। बाहर के अन्य नागरिक स्त्री-पुरुष आ आ कर एकत्रित होते है। आगतुकों में अभयदत्त और महाज्ञान भी है।]

विष्णुवर्धन—दशपुर के आदरणीय नागरिको, मैंने परिपाटी भग कर शिव-मदिर-उद्यान के स्थान पर सूर्य-मन्दिर में वसतोत्सव का आयोजन किया है, सभवत इनसे आप आश्चर्य-चकित होगे।

अभयदत्त—नवीनता-जनित आश्चर्य में एक विलक्षण रहस्यमय आनन्द होता है।

विष्णुवर्धन—किन्तु मै अपने स्नेही नागरिको की जिज्ञासा के आगे मै रहस्य के आवरण का निवारण करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। शिव-मन्दिर मेरा अपना है और मैंने अपने अपनेपन को जनता जनार्दन की गोद में फेंक दिया है, इसलिए मै उनसे ऐसे स्थान पर मिलना चाहता था जिसे वह अपना कह सकें। यह सूर्य-मन्दिर तन्तुवाय श्रेणी द्वारा निर्मित सार्वजनिक स्थान है और सार्वजनिक महत्त्व का उत्सव ऐसे ही स्थान पर होना उचित है।

वत्स—और प्रिय नागरिको, आज का उत्सव प्रतिवर्ष के समारोह से भिन्न है। आप निराश होंगे कि आज के उत्सव में न मदिरा है और न मधुबालाएँ।

एक नागरिक—तो व्यर्थ ही यहाँ इतनी भीड जमा करली। क्या मदिरा के विना भी वसतोत्सव होता है—जैसे जल-हीन सरिता, निष्प्राण शरीर। वर्ष में एक ही तो दिन आता है जब हम सार्वजनिक रूप में पी-पिला सकते हैं—सभ्यता के कृत्रिम बंधनों से मुक्त होकर मानव अपनी वास्तविक प्रकृति में प्रकट हो सकता है।

विष्णुवर्धन—जीवन में कभी-कभी उन्मुक्त आनन्दोत्सव मनाने के क्षणो के आगमन का मै स्वागत करता हूँ—और उन्हे जातीय जीवन के लिए स्वास्थकर समझता हूँ, किन्तु आज की परिस्थिति में हमारा सतत जागरूक रहना अनिवार्य है। हमारा देश विराट बन्दीगृह बना हुआ है। विदेशी हूण अत्याचार, अनय और हिंसा के प्रतीक बने हुए देश के सुख, शान्ति और स्वाभिमान को मर्दित करते हुए उन्मत्त गज की भाँति विचरण कर रहे है।

सुहासिनी—और आज न हमारा धन सुरक्षित है, न जीवन। इतना ही नहीं राम और कृष्ण के वशज अपनी आँख के आगे विदेशियों द्वारा मातृ-जाति का अपमान होते देखते है।

एक नागरिक—जब राजा ही नपुसक बनकर महलों में जा बैठे तब नागरिक कहाँ तक अपने शीश कटाएँ!

विष्णुवर्धन—ऐसी स्थिति में नागरिको को अपने हाथ में दण्ड लेना चाहिए।

दूसरा नागरिक—किन्तु राज-सत्ता इसे विद्रोह कहती है।

विष्णुवर्धन—राज-सत्ता से अधिक शक्तिशाली जन-सत्ता है। प्रारम्भ में युद्ध के वातावरण में सेना और जाति का नेतृत्व करने के लिए राजा का जनता द्वारा निर्वाचन हुआ था, पीछे यह पद पैतृक

बन गया। देश का शासन, न्याय-दान, पालन एव रक्षण राजा का कर्तव्य है। राज्याभिषेक के समय उसे इसकी प्रतिज्ञा लेनी होती है। प्रतिज्ञा-च्युत होने पर प्रजा राजा को अधिकार-च्युत कर सकती है।

महाज्ञान—राज-सत्ता को पैतृक न रखना इसीलिए उत्तम है कि राजा अपने आपको देश का स्वामी न समझने लगे। वास्तविक स्वामी तो जनता है।

मंदाकिनी—आज तो हमारी जन्मभूमि के वक्ष पर अत्याचार का नग्न नृत्य करने वाली सत्ता न तो भारतीय है और न जनता द्वारा निर्वाचित। उसके प्रति विद्रोह करना तो हमारा कर्तव्य है।

अभयदत्त—और एक दीर्घ समय से विदेशी सत्ता के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह की योजना कार्य कर रही है। आज इस समाचार की सार्वजनिक घोषणा करने की स्थिति में हम है।

विष्णुवर्धन—हमारा पर्याप्त कार्य हो गया है, हमारे पास एक सुसगठित, सुशिक्षित सेना है। शत्रु के विपुल शस्त्रास्त्र हमारी गुप्त सेना ने छीन लिये है और बहुसख्या में शस्त्रो का निर्माण हो रहा है। सर्वतोभद्र, जामदग्न, विश्वासघाती जैसे सहारक शस्त्रो का भी निर्माण हमने कराया है। शस्त्र-निर्माण करने वाली श्रेणी के प्रतिनिधि भी आज यहाँ उपस्थित है।

वत्स—और आपको प्रसन्नतापूर्ण आश्चर्य होगा कि अपने पक्ष का एक बिन्दु गिराए बिना प्रथम विजय हमने प्राप्त करली है। हमारे एक योद्धा ने हूण-सम्राट् तोरमाण की जीवन-लीला समाप्त करदी है। यह योद्धा भी यही उपस्थित है।

हेमचन्द्र—कौन है वह योद्धा ?

विष्णुवर्धन—(कचनी की तरफ अंगुली से निर्देश करता है) यह है वह यशस्वी योद्धा जो आज के वसतोत्सव की प्रधान नर्तकी

है। कचनी, अपन सुकुमार तन की तरगो को गति दो, साथ में कठ से अमृत-वर्षा होने दो।

[कचनी स्वर्ण-थाल में रखे हुए वज्र-मणि-जड़ित दीपकों को प्रज्वलित कर ज्योति-नृत्य करती है और गाती है। मदाकिनी, सुहासिनी और वत्स वाद्य बजाते है।]

कंचनी— (गान और नृत्य)

रात काली है घटाएँ घिर रहीं काली,
रक्त पीने के लिए व्याकुल हुई काली।
डर नहीं मानव—प्रलय की रात है,
रात के पीछे सुनहरा प्रात है।
है गगन के एक कोने में नई लाली,
रात काली है घटाएँ घिर रहीं काली।
भूमि में जागी लहू की प्यास है-
किस लिए होता दुखी आकाश है ?
नभ नहीं मानव भरेगा भूमि की प्याली,
रात काली है घटाएँ घिर रहीं काली।
डाल प्रण की वर्त्तिका दीपक जला,
ज्योति के, तम के हृदय पर, शर चला।
भूमि मावस में जलाए क्यों न दीवाली,
रात काली है घटाएं घिर रहीं काली।

[सपूर्ण जन-समुदाय कचनी के नृत्य का मत्र-मुग्ध होकर आनन्द लेता है। अकस्मात् धर्मदास, जयदेव और उमा का प्रवेश। तीनों गत दृश्य की वेश-भूषा में हो है।]

उमा—अब नवीन नृत्य आरम्भ होगा।

[नृत्य-गान रुक जाता है]

विष्णुवर्धन—क्या है उमा ?

उमा—विस्फोट ! विद्रोह प्रकाश में आगया है। हूण सेना विद्रोहियो की खोज में निकल पडी है। अब हमें अँधेरे विवरो के बाहर निकलना पडेगा।

विष्णुवर्धन—इसके लिए हम पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं। अंधकार के विवर से राष्ट्र का प्रसुप्त तेज बाहर आएगा और हमारे खड्ग शत्रु के हृदय-प्रदेश में अपना विवर बनाएँगे। यह वसंतोत्सव रणोत्सव में परिवर्तित होगा। (पुजारी से) कीजिए आप अपनी पूजा प्रारंभ। यहाँ उपस्थित नागरिक सूर्य भगवान के सम्मुख वीर-गति अथवा विजय-प्राप्ति के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध होंगे।

[पुजारी देवल में प्रवेश करता है। विष्णुवर्धन प्रतिमा के निकट रखा शंख उठाकर बजाता है। वत्स घंटा बजाता है।]

[पटाक्षेप]

तीसरा अंक

प्रथम दृश्य

[स्थान—चर्मवती तट पर हूण-सैनिक-शिविर के सामने का मैदान । समय—दिवस । हूण-सम्राट् मिहिरकुल, हूण-सेनापति और धन्यविष्णु का प्रवेश । तीनों सैनिक वेश में है । नेपथ्य में अश्वों के पद चाप, रथों के चलने का शब्द एव सेनाओं, में होने वाला अन्य कोलाहल कुछ-कुछ सुनाई देता है ।]

मिहिरकुल—महाराज धन्यविष्णु, जब उस नागिन-सी नर्तकी ने पिताश्री को डस लिया तब मैंने समझा था कि आप ही वह सँपेरा है जिसकी तू बी पर वह नृत्य करती है । मुझे कचनी से अधिक आप पर क्रोध आया था । मेरा रोप आपकी काया के खडखड करने को प्रस्तुत हो गया था ।

धन्यविष्णु—आश्चर्य, मेरे मस्तक को चूर्ण करने वाला बज्र आकाश में चमककर ही क्यो रह गया ! मेरा निर्लज्ज अस्तित्व धरा की छाती पर व्यर्थ ही लदा हुआ ह !

सेनापति—प्रकृति के तूफानो को विध्वश का कार्य अपूर्ण छोडकर रुकते हुए मानव ने देखा है, किन्तु प्रलय-रूप मिहिरकुल के प्रचड रोप को किसी ने अपने कोप-भाजन को समाप्त किए बिना शात होते नही देखा । निश्चय ही आपके नक्षत्र ऊँचे है । आप केवल मालव-नरेश ही नही रहेगे अपितु गुप्त-सम्राट् का स्थान भी ग्रहण करेंगे ।

मिहिरकुल—निश्चय ही, हूण कृतघ्न नही है । वे मित्र के मित्र और शत्रु के शत्रु है । वे जितने कठोर है उतने ही कोमल है । पृथ्वी के समान उनके हृदय में अग्नि और जल, दोनो विद्यमान है, उनकी

आँखो में सृष्टि और सहार दोनो का निवास है, वे किसी के लिए वरदान है तो किसी के लिए अभिशाप।

सेनापति—इस समय विद्रोही मालवो से जो युद्ध करना पड रहा है वह मालव-प्रदेश में हूण-सत्ता को स्थिर रखने के लिए नही अपितु यहाँ अपने मित्र मालव-नरेश धन्यविष्णु की प्रभुता को सुदृढ बनाने के लिए ही मालव-भूमि में हूणो का रक्त भी सीचा जा रहा है।

धन्यविष्णु—धन्यविष्णु हूण सम्राट् का सदैव उपकार मानेगा और अपना तन-मन-धन न्योछावर करने को प्रस्तुत रहेगा। मुझे इस बात का दुख है कि मेरे ही प्रदेश में सर्वप्रथम हूण-सत्ता के विरुद्ध विद्रोह उठ खडा हुआ है, किन्तु विश्वास कीजिए इसमें मालव-प्रदेश के सम्भ्रांत भद्रजनो का हाथ नही है। दो-चार धन्यविष्णु और वत्स भट्ट जैसे तरुणो ने जनता के निम्न वर्ग को देश प्रेम के भ्रामक किन्तु उत्तेजक गीत गाकर उभाड दिया है।

सेनापति—किंतु, मुझे खेद-सहित निवेदन करना पडता है कि मालव नरेश ने इस आत्मघाती विषैली भावना को रोकने के लिए प्रारम्भ में ही प्रयत्न नही किया। तभी इन दस्युओ को हमारे जल-मार्ग एव स्थल-मार्ग से आने वाले शस्त्रास्त्र लूटने का दुस्साहस हो सका और हमारे ही शस्त्रास्त्र आज हमारा काल बनने को प्रस्तुत है।

धन्यविष्णु—मगध से सग्राम-रत रहने के कारण यह अनावधानी हो गई और इन कापुरुषो को हमारी पीठ पर छुरा भोकने का अवसर मिल गया।

मिहिरकुल—किन्तु हूण-शक्ति रूपी प्रचड सिंह दस्यु-दल-रूपी पशु-दल का आखेट करने आ पहुँचा है। हूणो ने कभी किसी की पीठ पर प्रहार नही किया, वे मुक्ताकाश की छाया में वक्षस्थल खोलकर खडे होते है—शत्रु के वक्षस्थल पर ही प्रहार करते है। उनका एक चरण सिंहासन पर होता है और एक श्मशान पर।

सेनापति—आपका कथन सर्वथा सत्य है, सम्राट् ! हूण-असि ने सारे हरिवर्प[1] का वक्षस्थल चीर डाला, ससार की श्रेष्ठतम, प्रवलतम, कुशलतम गुप्त-सम्राटो की शक्ति से निरतर टकराते रहकर अन्त में गुप्त-साम्राज्य के भव्य भवन को खडहर बना ही दिया, किन्तु सम्राट्, तलवार से साम्राज्यो का निर्माण हो सकता है उन्हे स्थायित्व प्रदान नही किया जा सकता ।

मिहिरकुल—तव ?

सेनापति—मस्तको को काटकर नही, मस्तकों को अपना बनाकर ही हम स्थायी विजय पा सकेंगे । विष्णुवर्धन ने बिना शस्त्र चलाए ही मानव-जन-मन पर अपना अखड साम्राज्य स्थापित कर लिया है । सम्राट् मिहिरकुल और उनके अनन्य मित्र धन्यविष्णु के प्रति मालव-मन में सचरित घृणा के झझावात को शस्त्र शात नही कर सकेंगे । आज यदि हूण-वाणी विष्णुवर्धन को विद्रोही और सम्राट् मिहिरकुल को मालवो का सरक्षक और हितचितक उच्चारित करे तो मालव-प्राण अट्टहास कर उठेंगे । हाँ, महाराज धन्य-विष्णु स्वय एव उनके स्वजातीय विश्वसनीय व्यक्ति गाँव-गाँव में भ्रमण करके विद्रोहियो की स्वार्थपरता पर प्रकाश डालें तो मालव-प्रदेश युद्ध की विभीपिका से त्राण पा सकता है ।

मिहिरकुल—गुप्त-सम्राट् ने हूण-शक्ति से सघर्ष करने की व्यर्थता को समझकर हम से सधि कर ली है, मालव नरेश हमारे सखा है, भारत के किसी प्रदेश का अधिपति हम से छेडछाड करने का दुस्साहस नही करता । हमने गुप्त-सम्राट् से सधि कर ली इसी का अर्थ है कि हमारी विजय-लालसा भी समाप्त हो गई । हम तो भारत में सुख और शाति का साम्राज्य स्थापित करना चाहते है किन्तु ये भारत के स्वयभ प्रतिनिधि विष्णुवर्धन और वत्स भट्ट मूर्ख और उद्धत मालव

१ यूरोप ।

तरुणो को उन्मत्त कर निरीह जनता के प्राणो से खिलवाड कर रहे हैं। महाराज धन्यविष्णु, आप अपने देशवासियो को वास्तविक स्थिति से परिचित कीजिए।

धन्यविष्णु—मालव-जन-मन मे वास्तविकता का प्रकाश प्रसारित करने का पूर्ण प्रयत्न मेरी ओर से हो रहा है, किन्तु, जब से जनता को यह ज्ञात हुआ है कि विष्णुवर्धन ने आपका पोत लूट लिया, एव आपकी सेना से सुदर्शनहृद के समीप शस्त्र छीन लिये तब से उसके प्रति जनता के हृदय में अध श्रद्धा स्थापित हो गई है। लोग उसे दैवी शक्ति-सयुक्त समझने लगे है। जब तक एक बार इन विद्रोहियो को सैनिक पराजय नही मिलेगी तब तक जन-मन से इनका प्रभाव दूर नही होगा।

[एक सैनिक के साथ एक श्रेष्ठी का प्रवेश। दोनो मस्तक नमन कर मिहिरकुल को नमस्कार करते हैं।]

सैनिक—सम्राट् की आज्ञानुसार उज्जयिनी के नगर-श्रेष्ठी को ले आया हूँ।

मिहिरकुल—आप उज्जयिनी के नगर-श्रेष्ठी है।

श्रेष्ठी—लोग ऐसा कहते है किन्तु वास्तव में तो मै एक साधारण नागरिक हूँ।

मिहिरकुल—आपके पास कितना धन है ?

श्रेष्ठी—मेरे प्राण भी मेरे नही तब धन को अपना कैसे कहूँ ?

मिहिरकुल—जो आपके पास है यदि वह आपका नही है तब यदि मै उसे ले लूं तो आपको आपत्ति नही होनी चाहिए।

श्रेष्ठी—किन्तु वह जिनका है, उन्हे तो आपत्ति होगी।

धन्यविष्णु—मै जानता हूँ आप अपनी सम्पत्ति के स्वामी है।

श्रेष्ठी—नही राजन्, गुप्त-सम्राट् के धर्म-महामात्य जानते है कि मैने अपनी प्राय सभी सम्पत्ति विविध धार्मिक एव सार्वजनिक कार्यों के लिए अक्षय निधियाँ स्थापित करने में लगा दी है।

सेनापति—आप जैन है ?

श्रेष्ठी—अवश्य।

उस राज-द्रोही से बलपूर्वक उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया जाएगा।

[एक सैनिक एक बंदी किए हुए ग्रामीण मालव-सहित प्रवेश करता है और सम्राट् मिहिरकुल को मस्तक झुकाकर नमस्कार करता है।]

हूण सैनिक—सम्राट की आज्ञानुसार बंदी उपस्थित है।

मिहिरकुल—तुम चर्मवती में नौका-संचालन का व्यवसाय करते हो?

बंदी—हाँ।

सेनापति—कितनी नौकाएँ हैं तुम्हारे पास?

बंदी—एक भी नहीं।

धन्यविष्णु—कहाँ गईं?

बंदी—अग्निदेव को अर्पित कर दीं।

मिहिरकुल—क्यों?

बंदी—मुझे भय था कि मेरी नौकाओं का सेतु बनाकर हूण सैनिक चर्मवती को पार करेंगे।

मिहिरकुल—तो अब तुम्हारे शव पर से हूण अश्वारोही प्रयाण करेंगे।

बंदी—मुझे संतोष होगा कि मेरे जीवित रहते मेरी नौकाओं का प्रयोग मेरे देश के विरुद्ध नहीं हुआ।

मिहिरकुल—(सैनिक से) ले जाओ इसे और हाथ पैर बाँधकर इसे भूमि पर डाल दो और अश्वारोही सेना से कह दो कि अश्वों से मर्दित कर इसको उस मालव मृत्तिका में मिला दो जिसे यह प्राणों से अधिक प्रिय समझता है।

[सैनिक बंदी को ले जाता है।]

मिहिरकुल—देखा इसके प्रमाद को! ऐसा निश्चिंत जा रहा था मानो विवाह करने जा रहा है।

सेनापति—यह वही मालव है जिसे हूण-सेना ने अत्यन्त सरलता से अपने अधिकार में ले लिया था।

धन्यविष्णु—क्योकि उसके गोप्ता ने विश्व-विजेता हूण-शक्ति से युद्ध करने के स्थान पर उसका स्वागत किया था।

मिहिरकुल—गोप्ता ने राजा बनने के लिए विदेशी-सत्ता का स्वागत किया—किन्तु मालव-प्रजा तो न मालव नरेश को राजा मान सकी न हूण—सम्राट् को सम्राट्, वह तो अपराजित, स्वतत्र और स्वाधीन है। वह यदि किसी की आज्ञा मानती है तो अपने उद्धारक हृदय-सम्राट् विष्णुवर्धन की।

[एक गुप्तचर का प्रवेश और मस्तक नत कर नमस्कार करना।]

मिहिरकुल—क्या समाचार लाए हो ?

गुप्तचर—सम्राट् ! शत्रु-सेना हमारे पृष्ठ एव दोनो पार्श्व भागो पर एक साथ अकस्मात् आक्रमण करना चाहती है।

विष्णुवर्धन—किन्तु शत्रु-सेना तो चर्मवती के उस पार है।

गुप्तचर—शत्रु-सेना सब जगह है। चर्मवती के उस पार की सेना वही रहेगी—इस पार की सेना इस पार युद्ध करेगी। दूसरी बात यह है कि किसी भी मालव ग्राम से हमें अन्न का एक दाना भी प्राप्त नही होगा। जहां देखते है वही भडार रिक्त पाते है। भगवान् जाने धान्यागार मालव प्रदेश का अन्न भूमि खा गई या क्या हुआ ?

सेनापति—शत्रु रण-नीति मे कुशल नहीं है या उसके सैनिक शिक्षित और अनुशासन-बद्ध नहीं है, ऐसा हमें नही मानना चाहिए।

मिहिरकुल—मिहिरकुल को प्रथम बार वास्तविक युद्ध करना पडेगा। एरण में भी गुप्त-सम्राट् की सेना से घोर सग्राम करना पडा था। एक बार तो ऐसा जान पडा था कि हूण-सैनिको के धैर्य को स्थिर रखना असभव होगा किन्तु हमारे सख्या-बल ने सामतो को पराजित कर दिया। अब हमें उससे भी अधिक भयकर युद्ध करना पडेगा।

सेनापति—मै तो समझता हूँ वर्तमान परिस्थितियो मे प्रथम आक्रमण हमें करना चाहिए।

धन्यविष्णु—किन्तु हम चर्मवती के उस पार की शत्रु-सेना को ही जानते हैं—और वर्षा ने चर्मवती को उन्मादमयी कर दिया है।

मिहिरकुल—वीरों का मार्ग वर्षा का पानी पर्वतों की ऊँचाइयाँ, या सागर की उत्ताल तरगें नही रोक सकती। चाहे मुझे अपने सैनिको के शवो का सेतु बनाना पडे, किन्तु मै उस पार जाकर विष्णुवर्धन से दो हाथ करूँगा। चलिए शिविर में बैठकर आक्रमण की योजना निश्चित कर ली जाय।

[सब का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—मालव सैनिक-शिविर में वत्स का डेरा जो अन्य डेरों से पृथक् एकान्त में है। डेरे का केवल बाह्य भाग दृष्टि-गोचर होता है। कचनी और वत्स डेरे के अन्तप्रदेश से वाहर आते है। दोनों ही साधारण वेश-भूषा में है। दोनों डेरे के बाहर भूमि पर ही बैठ जाते है। वत्स एक दीर्घ निश्वास छोडता है।]

कचनी—बहुत श्रात हो गए हो आज के युद्ध में।

वत्स—तुम्हारे मनोरम मुखारविंद का मेरे नयनो के अलि कुछ और मधु-पान कर लें इसलिए जीवित बच गया हूँ। अप्रत्याशित परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी।

कचनी—अप्रत्याशित क्या !

वत्सहमें—आशा नही थी कि हूण चर्मवती के इस पार आकर हम पर आक्रमण करेंगे। हमने अभयदत्त धर्मदत्त और जयदेव के नेतृत्व में शत्रु के पृष्ठ और पार्श्व भागो पर आक्रमण करने की योजना बनाई थी किन्तु रण-कुशल मिहिरकुल ने हमें आक्रमण का अवसर

नहीं दिया। स्वय ही चर्मवती को पार कर पौ फटने के पूर्व ही आकाश के लाल होने से पहले पृथ्वी को रक्त से रगना प्रारम्भ कर दिया।

कचनी—मिहिरकुल भयानक ही नही चतुर भी है।

वत्स—हाँ, किन्तु विष्णुवर्धन भी कम नही है। उसने निमिष मात्र में सेना को चक्र-व्यूह मे सगठित कर लिया। जिस प्रकार कठोर चट्टान पर गिरकर प्रपात की धारा अगणित जल-कणो में छितरा जाती है उसी तरह शत्रु-सेना हमारे व्यूह से टकरा-टकराकर छिन्न-भिन्न होती रही। अन्त में हूण कन्नी काटकर उत्तर की तरफ सिमिट गए।

कचनी—क्यो, पुन चर्मवती के उस पार अपने शिविर में नही पहुँचे।

वत्सव—हाँ कैसे जाते, वहाँ तो अभयदत्त, धर्मदास और जयदेव योजना के अनुसार पहुँच गए थे।

कंचनी—ज्ञात होता है फिर मालव प्रदेश मे प्रवेश करने का विचार मिहिरकुल ने त्याग दिया है।

वत्स—ऐसा ही जान पडता है। उसने अनुभव कर लिया है कि जब तक विष्णुवर्धन और उसके उन्मत्त अनुचर है तब तक उसकी आकाक्षाओ की खेती मालव भूमि में नही फल सकती।

कंचनी—तब क्या युद्ध का अन्त निकट है ?

वत्स—निकट नही बहुत दूर जा पहुँचा है। यदि मिहिरकुल ने रात्रि में ही चर्मवती को पार न कर लिया होता तो हमारी योजना के अनुसार चर्मवती के तट पर ही मिहिरकुल, वन्यविष्णु आदि चिर-निद्रा में लीन हो जाते।

कंचनी—तब यह कहना चाहिए कि यह हमारी प्रथम पराजय है।

वत्स—पराजय कैसी ? हमने हूणों को मालव भूमि से निर्वासित कर दिया है। यह तो हमारी प्रथम महान् विजय है किन्तु कितनी महँगी पडी है यह विजय ? हूण साधारण योद्धा नही है। **उनके**

नाम से ही ससार की महान् जातियो के प्राण कम्पायमान उठते है। उन्होने अपने मस्तक का कुछ मूल्य समझा है, न अन्य

कचनी—तब तो नर-मुंडों से रण-क्षेत्र भर गया होगा।

वत्स—हाँ, अनेक महाकालियों की मालाओ का निर्माण हो सकता शकर के गण भूत-प्रेत-पिशाच युग-युग की प्यास बुझा सकते थे

कचनी—क्या महाकाली और शकर के गणो के दर्शन हुए तुमको।

वत्स—नही कचनी, धरती माता ने ही महाकाली का रूप धारण मुडमालाएं धारण करली, अपना खप्पर फैलाकर स्वय सारा रक्त पी लिया और फिर भी बोली कि मै प्यासी हूं। मैं धरती माता का ऐसा भयकर रूप देखकर कांप उठा। मै स लगा, किसने शस्य-श्यामला वैभवमयी मनोरमा मही को कुरूप बना दिया।

कंचनी—मनुष्य की रणोन्मत्तता ने।

वत्स—युद्ध के समान भयानक और कुत्सित कार्य कोई है, क सभ्यता का अभिशाप है यह !

कंचनी—ऐसी ही घृणा है युद्ध से तो इसे समाप्त करादो न !

वत्स—युद्ध का प्रारम्भ मनुष्य के हाथ में है अन्त नहीं। तथागत अर्हत भी युद्ध से युद्ध करके विजय प्राप्त न कर सके। तथागत अनुयायी देवपुत्र कनिष्क के रणोन्माद और विजय-लालसा उसके सामन्त इतने श्रात हो गए थे कि उन्होने रात को उ निद्रावस्था में हत्या करदी। कलिग का चेदिकुल-अवतस खा जैन था, किन्तु विजय-प्राप्ति के उन्माद में उसने पृथ्वी पर कम रक्त बहाया ?

कचनी—तब क्या अहिंसा के पथ पर चला ही नही जा सकता।

सामने निरपराध और निरीहो का जीवन लिया जाए तव क्या हम केवल मुंह निहारते रहे। हिंसा का उत्तर हिंसा से देना ही पडता है। तव हिंसा और प्रतिहिंसा के आवर्त और प्रत्यावर्त की सृष्टि होती है। भवसागर रक्त-सागर वन जाता है।

कचनी—थोडे से व्यक्तियो की महत्वाकाक्षाएँ स्वर्ग से भी सुन्दर वसुधा को नरक का प्रातरूप वना देती है। पृथ्वी का उदर फाडकर मनुष्य जो कुछ उपलब्ध करता है वह सब शस्त्रास्त्रो के निर्माण और वडी-वडी सेनाओ के पालन के सर्वभक्षी मुख में समा जाता है। शिक्षा, कला और सस्कृतियाँ कराह उठती है उनका साँस लेना भी दुर्लभ हो जाता है। मानव शील, सभ्यता, नीति और न्याय को भूल-कर मानव-आखेट मे निरत रहता है।

वत्स—जव तक मानव-हृदय में प्रतिस्पर्धा की भावना हैं तव तक मानव मानव का आखेट करने से विरत नही होगा। किसी दिन मिहिरकुल तुम्हारे रूप, सौन्दर्य और कला के प्रति आकर्षित हो सकता है, उसे भी तुम्हारा मोह हो सकता है तव मिहिरकुल और वत्स मे प्रतिस्पर्धा होगी। रावण को राम की सीता प्रिय थी इसलिए राम-रावण युद्ध हुआ। यही स्पर्धा भूमि के सम्बन्ध में भी होती है—भारतभूमि सुन्दर, सुखद, उर्वरा, खनिज-पदार्थो से भरपूर है इसलिए जिन देशो की भूमि कृपण अथवा वाँझ है वहाँ के निवासी इस पर अधिकार करना चाहते है और देश के पहले से रहने वाले व्यक्ति नवागन्तुको से युद्ध करते है।

कचनी—भारत ने कहा है—सारी वसुधा एक कुटुम्ब है। कुछ व्यक्ति शस्यश्यामला उर्वरा भूमि पर अधिकार जमा बैठें और अन्य मरुस्थलो मे भटकते फिरें या हिमावृत प्रदेशो में अपने जीवन को गलाते रहें, हम प्रकृति के वरदानो पर एकाधिपत्य स्थापित कर अपने ऐश्वर्य पर गर्वित हो तो अभावो की ज्वाला में जलने वाले मानव समूह बाँधकर हम पर आक्रमण करेंगे। तब हम देश-प्रेम

की सज्ञा देकर अपने स्वार्थो की रक्षा करने के लिए उन चिर-वचितो के प्राण लेगे।

वत्स—भारत ने किसी जाति को भारत की सतान बनकर यहाँ निवास करने और समान सुख-सुविधाएँ भोगने से वचित नही किया। किन्तु हम किसी का शासन अपने ऊपर सहन नही करेगे। हम किसी देश को लूटना नही चाहते, प्रकृति ने जो कुछ हमे दिया है हम उसे लेकर सतुष्ट है।

कचनी—प्रकृति ने भारत को जो दिया है वह यदि अधिक है तो उसे ससार मे वितरित होना ही चाहिए। जब तक हम देशो की प्राचीरो को चीरेंगे नही मानवता का मगल नही होगा।

वत्स—तुम्हारा तात्पर्य है कि मगलामुखी के प्रमोद-भवन की भाँति प्रकृति के प्रासाद के द्वार सबके लिए चिर-मुक्त रहे। परिचित-अपरिचित, स्वदेशी-विदेशी सब उसके लिए समान है। सरिता की धारा मे प्रत्येक पछी चोच डाल सकता है।

कचनी—यही तो स्वाभाविक जीवन है।

वत्स—तुम्हारे विचार मे गृहिणी-जीवन से वेश्या-जीवन अधिक स्वाभाविक अत अधिक आदरणीय है, किन्तु क्या समाज मे ऐसा होता है?

कचनी—समाज का निर्माण स्वार्थ के आधार पर हुआ है। मनुष्य का किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति आकर्षण अथवा ममत्व होता है—वह उसे पाने को लालायित होता है—पाकर उस पर अधिकार रखना चाहता है और इसके लिए सिद्धान्तों, आदर्शो और नियमो का जाल फैलाता है, जिसके अनुसार समाज और सामाजिक नियमो की सृष्टि होती है—किन्तु इस प्रकार की व्यवस्थाएँ कृत्रिम हैं—अत विनाश की ओर ले जाने वाली है।

वत्स—तुम समझती हो कि ससार मे सघर्ष की समाप्ति तभी होगी जब मानव पशु की भाँति सामाजिक बधनो से मुक्त सर्वथा स्वच्छन्द हो जाएगा। न उसकी कोई पत्नी होगी, न सतान, सभवत उसके

शरीर पर वस्त्र भी नही होगे। किन्तु सभ्यता के वस्त्रों को फाड कर फेंक देने पर भी दिगंबर स्वच्छन्द पशुत्व की परम सिद्धि प्राप्त करने पर भी मानव संघर्ष-विरत नहीं हो सकता, कंचनी।

कंचनी—तुम ऐसा क्यो समझते हो वत्स ?

वत्स—इसका उत्तर दो वृषभो का युद्ध है। वृषभ का तर्क उसके सींग हैं। वह मानव को भी अपने सींगो के तर्क से सीधा कर देता है। वह दिगंबर महामुनि है किन्तु उसकी भी कुछ कामनाएँ हैं जिनके लिए वह संघर्ष करता है।

कंचनी—व्यक्तियो का युद्ध समूहो, समाजो, जातियो और देशो के युद्धो से कम विनाशकारी है।

वत्स—सभ्यता और संस्कृति के अभाव में मनुष्य एक क्षण भी युद्ध से विश्राम नहीं पा सकता। प्रत्येक क्षण उसे पशुत्व के रक्त-पिपासु सींगों अथवा नखों का प्रयोग करना पड़ेगा। वह व्यक्ति से व्यक्ति का युद्ध होगा—किन्तु वह प्रत्येक व्यक्ति से प्रत्येक व्यक्ति का युद्ध होगा। धरा सदा रक्त-रंजित रहेगी। कंचनी, सभ्यता के वस्त्र मानव के युग-युग के अन्वेषण, श्रम और साधना की सिद्धियाँ हैं। मानव दिगंबर बनकर कंगाल हो जाएगा। तब कौन सुनेगा तुम्हारे पायलो की रुनुन झुनुन, कौन सुनेगा मेरी वीणा की झंकार। अज्ञान और पशुता के घनांधकार में कला का प्रकाश विलीन हो जाएगा।

कंचनी—मानव सभ्य होकर भी प्रतिस्पर्धा-प्रतिहिंसा से मुक्त नही हो सकता और असभ्य रहकर भी, तब चिरशांति का मार्ग है क्या ?

वत्स—सभ्यता का चरमोत्कर्ष ही मानव का कैलास है जहाँ चिर शांति है। सभ्यता का अर्थ प्रकृति के पदार्थो पर अधिकार करने की क्षमता नहीं है—प्रभुता और शक्ति को स्वायत्त करना भी नहीं है—आकांक्षा की मदिरा पीकर तांडव करना भी नहीं है।

कंचनी—तब क्या है ?

वत्स—सभ्यता का अर्थ है चाँदनी की भाँति स्वच्छ और शीतल हो जाना। चाँदनी भी तो तेजोमय है क्योंकि उसका उद्गम प्रचड दिवाकर है, किन्तु शशि के हिम-हृदय के स्पर्श से ज्वाला शीतल ज्योत्स्ना बन जाती है। हमें मानव-जीवन का तेज समाप्त नही करना है केवल उसे स्निग्ध और शीतल बनाना है। मानव को सभ्य बनाने का कार्य कला और साहित्य का है कचनी। ससार का भविष्य वत्स और कचनी के हाथो में है, विष्णुवर्धन और मिहिरकुल के नही।

कचनी—किन्तु

वत्स—(बात काटकर) छोडो इस अतहीन नीरस चर्चा को और तुम्हारे मादक स्वर-निर्झर में मेरे मन-प्राण को स्नान करने दो—ताकि तन-मन में कल शस्त्र चलाने का बल और उत्साह स्फूर्त हो सके।

कचनी—यहाँ वीणा तो नहीं है।

वत्स—तुम्हें वीणा का सहारा चाहिए भी नहीं।

[वत्स कचनी की गोद में अपना मस्तक रख देता है। कचनी उसके बालों पर हाथ फेरती हुई गीत प्रारभ करती है।]

कचनी—(गीत)

हम नदी के दो किनारे,
पास भी है, दूर भी है।

वह रही है प्रीत-धारा
युग युगों से पी रहे हम,
तृप्त होगी प्यास इस
विश्वास में ही जी रहे हम।

स्वप्न निर्मित नित्य होते
नित्य होते चूर भी है।
हम नदी के दो किनारे
पास भी है दूर भी है।

दूर रह कर ही जगत को
दे सकेंगे स्नेह-धारा,
इसलिए पाने न देता
चिर-विरह का नभ किनारा।

कह रहे हम, "घन गगन के
हैं मधुर भी, क्रूर भी है।"
हम नदी के दो किनारे
पास भी हैं दूर भी हैं।

भूमि से नभ के अधर मिलते
मगर हम मिल न पाते,
चाहते हैं पास आना,
पर करें क्या, हिल न पाते।

चिर-विरह में चिर-मिलन के
ज्वार से भरपूर भी हैं।
हम नदी के दो किनारे
पास भी हैं, दूर भी हैं।

[मंदाकिनी का प्रवेश। वत्स का मस्तक कंचनी की गोद में देखकर उसकी आँखें रोष से रक्त-वर्ण हो जाती हैं। कंचनी और वत्स उठ खड़े होते हैं।]

मंदाकिनी—(व्यंग और तीखेपन के साथ) कंचनी, तुम्हें नींद नहीं आती ?

कंचनी—नींद तो आपको भी नहीं आ रही।

मंदाकिनी—इतनी रात बीते एक वेश्या का सैनिक शिविर में विचरण करना आपत्तिजनक है।

कंचनी—इतनी रात बीते एक कुमारी का सैनिक शिविर में विच-रण करना आपत्तिजनक है।

मंदाकिनी—मैं वही आई हूँ जहाँ आने की अनुमति मुझे प्राप्त है।

कचनी—और वेश्या को किसी के भी पास जाने की अनुमति प्राप्त है।

मदाकिनी—क्या तुम वेश्या हो ?

कचनी—आपको सदेह है ?

मंदाकिनी—तुम्हें अपने वेश्या होने का प्रमाण देना पड़ेगा।

कंचनी—क्या ?

मदाकिनी—तुम्हें मिहिरकुल के पास जाकर उससे प्रेम-निवेदन करना होगा।

कचनी—मैं मिहिरकुल से घृणा करती हूँ।

मदाकिनी—वेश्या किसी से प्रेम नही करती—किसी से घृणा भी नहीं करती। तुम्हे मिहिरकुल के पास जाना ही होगा।

वत्स—मदाकिनी, तुम मुझे दण्ड दे रही हो।

मदाकिनी—तुमने मुझे कम दण्ड नही दिया है। वेश्या होती है क्षण दो क्षण का मनोरजन और गृहिणी जीवन की सहचरी। मैं वेश्या को सहचरी नही बनने दूंगी। यदि वेश्या प्रेम करेगी और प्रेम का प्रतिदान चाहेगी तो मैं तुम्हारे पास ही नही ससार से उसे विदा कर दूंगी।

वत्स—ऐसा करके क्या तुम मेरे हृदय को शाति प्रदान करोगी ?

मदाकिनी—तुमने मेरे हृदय की शाति की बडी चिन्ता की है ?

कचनी—वत्स, तुम्हारी भावी गृहिणी तुम्हारी शाति की चिन्ता करे चाहे न करे लेकिन कचनी तो करेगी ही। (**मदाकिनी से**) मदाकिनी, कचनी गृहिणी बनने का स्वप्न नही देखती। तुम्हारे भद्र समाज में इतनी उदारता है कहाँ जो वेश्या को गृहिणी बनने का सम्मान पाने दे, वह तो पतित को रसातल में धकेलता है। वत्स, अब मैं जाती हूँ—और मिहिरकुल से मिले बिना आप लोगों को मुँह नही दिखाऊँगी।

[**कचनी का प्रस्थान**]

वत्स—कचनी ! सुनो, मिहिरकुल तुम्हारे प्राणो का ग्राहक है ।

[वत्स कचनी के पीछे जाता है ।]

मंदाकिनी—वत्स ! सुनो, कचनी तुम्हारे जीवन की ग्राहक है ।

[मंदाकिनी का वत्स के पीछे प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—दशपुर में वह स्थान जहां विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) की माता सती हुई थी । समय—संध्या । विष्णुवर्धन एकाकी बैठा हुआ अस्तगत सूर्य की रश्मियों को देख रहा है । पश्चिमी आकाश में बादल की एक टुकडी उड़ती हुई आगई है जो रवि-रश्मियो से रक्त-वर्ण हो गई है ।]

विष्णुवर्धन—अस्तगत सूर्य की रश्मियो ने मेघ की टुकडी को रक्तिम रग से रग दिया है—मानो जाते-जाते भविष्य की सूचना कर रहा हो । अभी धरती और आकाश को रक्त की और भी प्यास है ।

[सुहासिनी का प्रवेश ।]

सुहासिनी—एकात में किस की प्रतीक्षा कर रहे है जनेन्द्र !

विष्णुवर्धन—न जाने कितनी अवधि से एकात मेरी प्रतीक्षा कर रहा था और भीड के एकात से ऊबकर मै भी एकात की जननी के समान वात्सल्यपूर्णांक गोद में बैठने के लिए व्याकुल था ।

सुहासिनी—भीड का भी एकात होता है ?

विष्णुवर्धन—क्यो नही ? विश्व के विपुल जन-समुदाय में जहां एक भी प्राणी ममत्व का अंचल फैलाकर उसकी छाया में बैठने का आमन्त्रण नही देता, जहां मनुष्य मनुष्य के हृदय को शरो से क्षत-

विक्षत करता है, जहाँ के कोलाहल के कठ में स्नेह की स्निग्धता नही है, जहाँ प्रभुता, वैभव, विलास एव ऐश्वर्य जीवन पर लदे हुए शिलाखड ज्ञात होते है वह एकात से भी—अधिक नीरस है।

सुहासिनी—ज्ञात होता है नित्यप्रति के रक्त-काड ने तुम्हें जीवन से विरक्त कर दिया है। किन्तु आज तो मालव-जनेन्द्र विष्णुवर्धन ने विश्वविजयी बर्बर दुर्धर्ष हूणो का गर्वोन्मत्त मस्तक चूर्ण कर दिया है। मिहिरकुल अपनी अवशेष सेना को, जिसे सेना कहना भी उपयुक्त नही, लेकर उत्तर-पश्चिम की दिशा में प्रयाण कर गया है। आज तो मालवो की इस महान् विजय पर तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए। आज मालव-प्रदेश के प्रत्येक भवन में, प्रत्येक कुटी में दीप-माला जलाने की आज्ञा देनी चाहिए।

विष्णुवर्धन—दीप-माला जलाने की आज्ञा देनी नही पडती, सुहासिनी! जब मधुमास आता है वन-उपवन में राशि-राशि पुष्प खिलखिलाकर हँस पडते है और पतझड में प्रयत्न करने पर भी प्रकृति के अधरो पर एक क्षीण-सी मुसकान की रेखा भी नही खिचती। मानव-हृदय में जब आनन्द क्रीडा करता है तब अपने आप दीपमालाएँ सँजोई जाती है—तब अपने आप ही आनन्द प्रकाशित हो उठता है।

सुहासिनी—क्या स्वाधीनता की प्राप्ति आनन्द का ज्वार लाने के लिए पर्याप्त कारण नही है?

विष्णुवर्धन—स्वाधीनता की प्राप्ति आनन्द का विषय अवश्य है, सुहासिनी! क्योकि उसकी साधना में बलिदान करना पडता है। प्राणो की बलि देने पर स्वाधीनता की प्राप्ति होती है तभी वह प्राणो से भी अधिक प्रिय है। तुम तो जानती हो, सुहासिनी, हमारे देश में जब शस्य परिपक्व होता है तब हम होलिका का त्यौहार मनाते है।—छोटे-बडे, धनी-निर्धन का भेद-भाव भूलकर एक रूप हो जाते है—नाचते है—गाते है—परस्पर रग डालते है—यह सब

किस लिए ! इसलिए न कि हमारे कठिन परिश्रम के अंकुर फल लाते है ।

सुहासिनी—आज हमारी स्वाधीनता की खेती फली है, तो क्या हमें आनद से उन्मत्त नही हो उठना चाहिए ?

विष्णुवर्धन—क्यो नही ? आकाश से जलदो ने इतना जल नही बरसाया होगा जितना मालव-असि ने हूणो का रक्त मालव प्रदेश के काले-काले खेतो में सीचा है, हूणो का ही नही स्वय मालवो का भी। सहस्रो नर मुडो को बीज की भाँति खेतो में बो दिया जाता है, तब स्वाधीनता के दुर्लभ शस्य को लहराते हुए हम देखते है। आज प्रत्येक मालव-भवन और मालव-कुटी में मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा किए बिना भी दीप जलेंगे, सुहासिनी ! तब दीपमाला के प्रकाश में माताएँ देखेंगी—आज उनके घर में उनके लाडले पुत्र नहीं है, बहनें देखेंगी उनके भाई नही है पत्नियाँ देखेंगी उनके मस्तक का सिंदूर पुछ गया है—तब क्या दीपको की आँखो में जल नही भर आएगा ।

[विष्णुवर्धन की आँखें सजल हो उठती है ।]

सुहासिनी—तुम्हारी जिन आँखो में ज्वालामुखी जलता था आज उनमें सावन के मेघ छा गए है ।

विष्णुवर्धन—मेरा वस चलता तो विश्वभर के सारे बादल अपनी आँखो में भर लेता और मालव भूमि पर बरसाकर रक्त के धब्बो को धो डालता । प्रत्येक घर में अनगिनती आँखो को अश्रु-वर्षा नही करनी पडती । मैं सबका प्रतिनिधि हूँ, मैं उन सबके लिए रो लेता । सबकी आँखो मे आँसू भर देना मेरे लिए सभव था किन्तु सबकी आँखो के अश्रु पोछने के लिए उतने हाथ कहाँ से पाऊँगा ।

[बाल खोले हुए विक्षिप्त-सी उमा का प्रवेश]

उमा—वह स्वर्ग द्वार पर खडे मेरी प्रतीक्षा कर रहे है और मैं अभी

तक यहाँ इस कठोर पृथ्वी पर खडी हूँ। शीघ्र तैयार करो मेरा रथ—अग्नि-रथ। मैं जाऊँगी—अपने प्रिय के पास। मैं जाऊँगी।

सुहासिनी—उमा, क्या हुआ ?

उमा—कुछ नही, सुहासिनी, वह मुझे अकेला छोडकर चले गए। शत्रु-शवो की शैया बिछाकर अनत निद्रा में लीन हो गए। स्वतत्रता के महायज्ञ में उन्होने अपनी आहुति दे दी।

विष्णुवर्धन—(उठकर उमा के मस्तक पर हाथ रखकर) तो वहिन, तुम्हें अपने सौभाग्य पर गर्व होना चाहिए। मनुष्य को एक दिन इस ससार से विदा होना ही पडता है। घर में लबी अवधि तक शैया पर पडे रहकर परिजनो को दुखी करते हुए मरने से रणक्षेत्र में प्राण देना श्रेष्ठ है। क्षत्रियो को यही मृत्यु शोभा देती है। तुम्हे दुखी नहीं होना चाहिए, उमा !

उमा—मैं दुखी नही हूँ, जनेन्द्र ! मुझे गर्व रहा है अपने पति के जीनव पर, मुझे गर्व है उनकी मृत्यु पर भी। आपने उनकी रणक्षेत्र में सदा हरावल में रहने की आकाक्षा की पूर्ति की, मुझे विश्वास है कि मेरी आकाक्षा की भी आप पूर्ति करेंगे।

विष्णुवर्धन—ऐसी कौनसी वस्तु है जो मेरे पास है और मे तुम्हे दे नही सकता। तुम आज्ञा दो तो तुम्हारे पुत्र को अपना उत्तराधिकारी, मालव प्रदेश का भावी जनेन्द्र घोपित कर दूँ।

उमा—मुझे अपने पुत्र की चिंता नही है। यदि उसमें उस महान् व्यक्तित्व का अश है जो अपने देश के प्रति सदा विश्वास-पात्र रहा, जो देश के लिए जिया और देश के लिए ही मरा—तो मै समझती हूँ, वह चाहे कितनी ही विपरीत परिस्थितियो में पले—वह कुछ नही तो एक सच्चा सैनिक या सच्चा कृपक तो वन ही सकेगा।

सुहासिनी—तव तुम क्या चाहती हो, वहन ?

उमा—इस समय हम मालव-प्रदेश के उद्धारक जनेन्द्र विष्णुवर्धन की

महाप्राण महासती—माताजी—की समाधि के पास खड़े हैं। मैं उन्ही के बनाए हुए पथ पर अग्रसर होना चाहती हूँ। माताजी के पास ही मेरे लिए भी चिता का निर्माण करा दीजिए।

विष्णुवर्धन—यह तो जीवन के उत्तरदायित्व से विमुख होना है, बहिन !

उमा—यही बात आप माताजी से क्यो न कह सके ?

विष्णुवर्धन—क्योंकि वह माँ थी, मै उनकी गोद में पला था, मै उनसे अधिक विवेक रखता हूँ इस बात को वह मान नही सकती थी।

सुहासिनी—और वह जिन सस्कारो में पलकर बूढी हुई थी उन पर नए युग का तर्क चल ही नहीं सकता था। मै तो कहती हूँ यदि पुरुप पत्नी के निर्धन पर उसके साथ चिता में नही जलता तो नारी ही क्यो जले ? सती महादेव शकर को कितना प्यार करती थी कि अपने पिता दक्ष-द्वारा उनका अपमान किए जाने पर प्रज्व-लित यज्ञ-कुण्ड में कूदकर उन्होंने प्राण दे दिए—और शकर उनके वियोग में चाहे कितने ही विह्वल हुए किन्तु प्राण नहीं दे सके।

उमा—पति ही नारी के जीवन की गति है। पति के जीवन का पूर्ण विराम होने पर नारी-जीवन का भी पूर्ण विराम हो जाना आवश्यक है।

सुहासिनी—ऐसा होता तो पति के स्वर्गवास के साथ ही पत्नी की हृदय-गति स्वतः निस्पन्द हो जाती। पति से प्रेम करने का यह अर्थ नहीं कि ससार के प्रति अपने कर्तव्य को हम भूल जावें। केवल पति से प्यार करना ही तुम्हारा कर्तव्य था तब क्यों धनुप-बाण लेकर तुम-रण क्षेत्र में गई थी। पत्नियों को पतियों का परिचा-रिकाएँ बनाए रखकर समाज ने इन्हे दुर्बल बनाया है, अन्यथा नारी अबला नही है। वह पुरुष से वल्लरी की भांति लिपटकर रहने के लिए नहीं है। उसे स्वत. अपने बल पर भी खड़ा होना चाहिए।

उमा—किन्तु वह मुझे बुला रहे है। उनकी आत्मा को ··

सुहासिनी—मृत्यु के बाद कौन किसे बुलाता है, बहिन ! ससार के नाते ससार में ही रह जाते है। मनुष्य मरकर मनुष्य-योनि में ही जाता है यह भी तो हमें ज्ञात नही। तब तुम मरकर अपने स्वामी को पा सकोगी इसका भी तो विश्वास नही। मै जानती हूँ—हमारा समाज, पति की मृत्यु के पश्चात् जीवित रहने वाली नारी की उपेक्षा करता है, किन्तु एक निर्दय परिपाटी से पराजय मान लेने की अपेक्षा समाज के व्यग-बाण सहते हुए युद्ध करना अधिक वीरता का कार्य है।

विष्णुवर्धन—उमा वीरागना है। वह समाज से नही डरेगी। उसने सैकडो हूणो के वक्षस्थलो को क्षत-विक्षत किया है। उसने शत्रु द्वारा की जाने वाली शर-वर्षा में भी धैर्य नही छोडा—वह क्या विचिलित हो जायगी। वह माँ भी है—ऐसी माँ जिसकी गोद में नन्हा शिशु है—क्या वह उसे निर्दयता से पृथ्वी पर पटककर चली जाएगी ?

[उमा चुप रहती है। वत्स और हेमचन्द्र का प्रवेश]

वत्स—सुहासिनी !

सुहासिनी—कहिए, कवि-सम्राट् !

वत्स—आपके बन्धु मालव नरेश धन्यविष्णु का '

सुहासिनी—शव रण-क्षेत्र में प्राप्त हुआ है—यही कहना चाहते हो न तुम।

वत्स—तो आप जानती है ?

सुहासिनी–हाँ, जानती हूँ और मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि मेरे धनुष से छूटे हुए शर ने ही उनके प्राण लिये हैं।

विष्णुवर्धन—अपने अग्रज पर शस्त्र सचालित करते हुए तुम्हारे हाथ काँपे नही !

सुहासिनी—रणक्षेत्र में न कोई बन्धु है, न कोई बहिन। वहाँ शत्रु के

सामने शत्रु खड़ा होता है। मैंने अपने अग्रज का वध नही किया, उसने तो स्वय उस दिन आत्म-हत्या करली जिस दिन मालव-नरेश बनने के मोह में उसने हूणो का आधिपत्य स्वीकार किया। मैंने तो एक देशद्रोही नरेश की हत्या की है—मुझे अपने इस पुण्य-कार्य के लिए गर्व है।

वत्स—अद्भुत है आप !

सुहासिनी—अद्भुत हो तुम, वत्स ! जो एक देशद्रोही की मृत्यु पर मेरी आंखो में अश्रु देखना चाहते हो। यह सत्य है कि बचपन में मुझे अपने भाई से इतना प्रेम था कि जब तक वह मेरी थाली में भोजन न करें मै भी भोजन ग्रहण नही करती थी। हम दो तन और एक प्राण थे। एक ही डाल में खिले हुए दो पुष्प समय की आंधी में उड़-कर दो दिशाओ में जा पड़े। एक-दूसरे के लिए शूल बन गए। वह केवल मेरे लिए ही शूल बनता तो मै उसके नही अपने प्राण लेती—किन्तु जब वह देश का शूल बन गया तो मुझे उसके प्राण लेने पडे। वत्स, धन्यविष्णु की मृत्यु पर तनिक भी विचार करने कि आवश्यकता नही है। उनकी लाश से चील-कौओ और शृगालो की उदर-ज्वाला शात होने दो।

विष्णुवर्धन—छि: नारी होकर ऐसी कठोर, निर्दय बात मुंह से निकालती हो। वत्स, महाराज धन्यविष्णु के शव का आदरपूर्वक दाह-सस्कार करने का प्रबन्ध करो। उनके कलकपूर्ण कार्य उनके साथ चले गए।

हासिुसनी—साथ चले गए। क्या साथ गया ? इतने मालव नर-मुडो की बलि इस निर्दय, निलज्ज व्यक्ति ने ले ली कि आज मालव-प्रदेश में स्त्रियो को हल चलाने पड रहे है। जिस व्यक्ति में इतना भी श्रह नही था कि अपनी सहोदरा पर वासनापूर्ण दृष्टि डालने वाली आंखो को बाहर निकाल ले—वह मनुष्य था ही कब ! ऐसे व्यक्ति का आदर कैसा !

विष्णुवर्धन—शात, सुहासिनी, शात ! मै जानता हूँ—यह तुम्हारा क्रोध नही, घृणा नही, तुम्हारा अपने अग्रज के प्रति प्रेम बोल रहा है। मै तुम्हारी निराशा को समझता हूँ। मै भी धन्यविष्णु प्रमाणित होता तो सभवत मदाकिनी भी यही कहती, किन्तु हम यह नही भूल सकते कि एक के अच्छे और एक के बुरे हो जाने पर रक्त का सम्बन्ध टूटता नही है। तुम अपने भाई को महान् व्यक्ति, वीर-शिरोमणि, यशस्वी देखना चाहती थी—क्योकि तुम उसे बहुत प्यार करती हो—तुम्हारी आशा पूर्ण नही हुई तब तुम्हारा प्रेम क्रोध बन गया। तुम्हारी आँखों में चिनगारी है किन्तु तुम्हारे हृदय में आँसुओं का समुद्र है। इसे ससार चाहे न जाने किन्तु विष्णुवर्धन तो जानता है। वत्स, मेरे आदेश का पालन करो।

वत्स—आपकी आज्ञा का पालन होगा।

हेमचन्द्र—मुझे भी कुछ निवेदन करना है।

विष्णु—आज्ञा कीजिए।

हेमचन्द्र—दशपुर के नागरिक विज्योत्सव मनाना चाहते हैं।

विष्णु—अभी युद्ध समाप्त नही हुआ।

हेमचन्द्र—यह आप क्या कहते है ?

विष्णु—हॉ ठीक कहता हूँ। शत्रु मालव-सीमा से चला गया है किन्तु उसने विजय-लालसा का त्याग कर दिया ऐसा नही मानना चाहिए। हूण भारत से स्कन्दगुप्त के काल से टकरा रहे है। अस्थायी विजय-पराजय से कुछ नही होता। हमें शत्रु का पीछा करना पडेगा—सर्प को चोट खाकर भाग जाने देना उचित नही है। उसके फन को पूर्ण रूप से मर्दित कर उसे सर्वथा निर्जीव कर देना ही उचित है।

हेमचन्द्र—तब फिर युद्ध का एक नया परिच्छेद प्रारम्भ होगा। किन्तु क्या मालव-प्रदेश में अब लडने की जान शेष है ?

विष्णु—श्रेष्ठी हेमचन्द्र जी ! साहस का नाम ही जीवन है। साहस ही शक्ति है। हूणों को पराजित कर मालव योद्धा यम के अवतार बन

गए है । और अब भावी युद्ध का सपूर्ण भार मालवो को ही नही उठाना पड़ेगा ।

हेमचन्द्र—तब ?

विष्णु—उदयोल्मुख सूर्य को सभी नमस्कार करते है, श्रेष्ठी । अब विष्णु के आदेश से भारत भर के नरेश धन-जन से हूणों के विरुद्ध सहायता देंगे ।

सुहासिनी—क्या आज यही राजसभा जमेगी ।

विष्ण—मै तो भूल ही गया था कि मेरा कोई घर है—इसीलिए यहाँ—माँ के पास आ बैठा था । तो माँ, अब मै जाता हूँ । मैने शपथ ली थी कि हूणो से भारतभूमि को मुक्त करूँगा—उस शपथ की आशिक पूर्ति हो गई है । मुझे आशीर्वाद दो कि शेष अश की पूर्ति भी मैं कर सकूं । (उमा से) चलो उमा ! तुम मेरी मां की तरह अपने पुत्र के पास से भाग न सकोगी । अभी तो युद्ध समाप्त नही हुआ । मेरे पास सैनिकों का अभाव है—मै तुम्हे कैसे गँवा दूं ।

[उमा की आंखो में आंसू आ जाते है ।]

विष्णुवर्धन—तुम्हारे प्राणो की ज्वाला पानी बनकर आंखो में आ गई । अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम हमारा साथ नही छोडोगी । चलो मेरे साथ ।

[सब का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान—वितस्ता का तट । समय—रात्रि का प्रारम्भ । मिहिरकुल रक्त-रजित वस्त्र पहने, आहत और श्रांत-क्लान्त आता है । आगे चलने में कष्ट अनुभव कर एक वृक्ष के तने से टिक कर बैठ जाता है । इसी समय कचनी ठीक उसी वेश-भूषा में, जिसमें एरण के सैनिक शिविर में मिहिरकुल के पास गई

थी, आती है और जिस वृक्ष के आश्रय से मिहिरकुल बैठा है उसी के पीछे आँख बचाकर जा खडी होती है ।]

कचनी—(खिलखिलाकर हँसती है) ह ह ह !

मिहिरकुल—मेरे जीवन में इस समय मृत्यु के अतिरिक्त और कौन आ सकता है—किन्तु क्या मृत्यु का स्वर इतना मधुर है ? ऐ विश्व-विजयी मिहिरकुल का उपहास करने वाले मधुर स्वर सामने आ ।

कचनी —आती हूँ ! मैं उन समस्त भारतीय नारियो का सम्मिलित स्वर हूँ जिन्हें हूण सैनिको की उन्मत्त लालसा ने लाछित किया है ।

[कचनी मिहिरकुल के सम्मुख आती है ।]

मिहिरकुल—कचनी ! पिता जी की हत्यारिन, कचनी !

कचनी—यदि छुरी मे कचनी हूण-सम्राट् के प्राण ले ले, तो हत्यारिन कचनी होगी या छुरी ? न्याय प्राण-दण्ड कचनी को देगा या छुरी को ?

मिहिरकुल—कचनी को ।

कचनी—तव सम्राट् तोरमाण की हत्या का आरोप छुरी पर क्यो लगाया जाता है । कचनी तो हत्यारे का शस्त्र थी ।

मिहिरकुल—यह अभिनय मेरे सम्मुख मत करो, कचनी ! तुम किसी का शस्त्र वनने वाली निष्प्राण वस्तु नही हो ।

कचनी—जो अपनी इच्छा का स्वामी नही, अपने जीवन का स्वामी नही वह निर्जीव नही तो क्या है ।

मिहिरकुल—मनुष्य हिमगिरि को उठाकर भारतीय महासागर में रख दे सकता है किन्तु कचनी को अपनी इच्छा के अनुसार नही चला सकता ।

कचनी—सम्राट् के इस विश्वास का कारण ?

मिहिरकुल—एरण के सैनिक शिविर मे जब मैं तुम्हारे मादक नृत्य को पूरा न देखकर गजो के चिघाड का भीषण रव सुनने को लालायित हो उठा था तब मैंने तुम्हारी आहत सर्पिणी-सी आँखो में कुछ

चमकते हुए अक्षर पढे थे ।

कचनी—क्या कहते थे अक्षर ?

मिहिरकुल—यही कि रूप-गर्विता नारी किसी दिन निद्रितावस्था में मुझे डसेगी । मेरे प्राण लेगी ।

कचनी—क्या समय ने मिहिरकुल को कभी सोते देखा है ?

मिहिरकुल—दिन और रात्रि की भाँति जाग्रति और निद्रा का मनुष्य के जीवन में आगमन होता है ।

कचनी—मनुष्य के जीवन में ! किन्तु जो मनुष्य नही, हिंसा का स्वरूप है उसकी काया चाहे मूर्छित हो जाए किन्तु उसके हृदय में फुफुकारने वाली हिंसा तो चिर-जाग्रत, चिर-चैतन्य, चिर-गतिवान रहती है । हिंसा प्रेतनी कभी नही सोती ।

मिहिरकुल—एक और भी प्रेत है जो नही सोता ।

कचनी—कौन सा प्रेत ?

मिहिरकुल—प्रेम । प्रेम भी चिर-जाग्रत रहता है, मानव की मृत्यु के पश्चात् भी उसका प्रेम जाग्रत, जीवित रहता है ।

मिहिरकुल—क्या एक हत्यारा, विश्व-शांति को हरण करने वाला दस्यु ससार को श्मशान बनाने का इच्छुक पिशाच भी प्रेम की चर्चा कर सकता है ?

मिहिरकुल—जब वेश्या प्रेम की चर्चा कर सकती है तो हत्यारा और डाकू क्यो नही ?

कचनी—तुमने देखा है कही प्रेम ?

मिहिरकुल—प्रेम का अंतहीन सागर देखा है ।

कचनी—कहाँ काश्मीर की राजकुमारी की आँखो में !

मिहिरकुल—छि, वह बेचारी तो काश्मीर के हिम के समान शीतल है ।

कंचनी—उसका श्वास काश्मीर के केशर के समान सुगंधित होगा ।

मिहिरकुल—हाँ, काश्मीर के केशर के बाग ने ही तो मुझे खींच लिया है अपने पास ।

कचनी—और तुम घुस गए केशर के उपवन में सांप की भांति।

मिहिरकुल—राजकुमारी ने सांप को ही स्वर्ग के देवता के रूप में देखा और उसे वरमाला पहना दी।

कचनी—और तब सांप ने राजकुमारी के पिता काश्मीर-नरेश को डस लिया और स्वय काश्मीर का राजा बन बैठा। राजकुमारी को महारानी बना लिया।

मिहिरकुल—किन्तु राजकुमारी पदोन्नति से प्रसन्न नही हुई—वह अपने पिता के हत्यारे से घृणा करती है।

कचनी—यह तो ठीक नही हुआ।

मिहिरकुल—ठीक क्यो नही हुआ ? राजकुमारी से विवाह तो एक राजनीतिक व्यवसाय था। काश्मीर-नरेश का विश्वास पाने के लिए मैंने शैवमत को भी अगीकार किया। काश्मीर-नरेश इस व्यवसाय में घाटा खा बैठे, मिहिरकुल को काश्मीर की राजकुमारी का प्रेम नही, उसका राज्य चाहिए था सो उसे प्राप्त हो गया।

कचनी—तब तुमने राजकुमारी की आंखों में प्रेम नही देखा।

मिहिरकुल—नहीं देखा।

कचनी—तब कहां देखा ?

मिहिरकुल—कचनी के क्रोध-ज्वलित लोचनो में।

कचनी—प्रेम, किसके प्रति ?

मिहिरकुल—प्रेम मिहिरकुल के प्रति। निर्दय, नृशस, वज्र से भी कठोर मिहिरकुल के प्रति !

कचनी—प्रेम या प्रतिहिसा ?

मिहिरकुल—प्रतिहिसा तो केवल प्रीति का घूंघट थी। मेरी सुतीक्ष्ण दृष्टि ने प्रतिहिसा की लोहित घटाओ में अन्तर्निहित प्रीत के शशि को मुसकुराते हुए देख लिया था। जानता था तुम एक दिन आओगी। आओ—पास आओ—नही आओगी—तो मैं तुम्हे पकड़ लाऊंगा।

[मिहिरकुल उठना चाहता है किन्तु उठने में कुछ कष्ट होता है—यह देखकर कचनी स्वयं उसके पास पहुँचती है । और उसे आश्रय देती है ।]

कंचनी—मै जानती थी, तुम्हारे जीवन में वह घडी भी आएगी जब तुम आश्रय की आकाक्षा करोगे ।

[मिहिरकुल कंचनी की गोद में अपना मस्तक रख देता है ।]

मिहिरकुल—स्नेहमयी, तुमने पिताजी को मार डाला, अब मुझे भी मार डालो ।

कंचनी—तुमने अभी तो कहा था कि मै तुम्हे प्यार करती हूँ । यदि प्यार करती हूँ तो क्या तुम्हे मार सकूँगी ?

मिहिरकुल—मार डालो तो प्रत्येक क्षण की मरण-यत्रणा से बचालो कचनी !

कंचनी—रावण की भाँति तुमने अग्नि, जल, थल, वायु, आकाश सभी तत्वो को अपना दास बनाया—अब मरण की कामना क्यो करते हो, महाप्राण ?

मिहिरकुल—तृष्णा के तप्त तवे पर प्राप्तियो के जलविन्दु जलकर वाष्प बन गए, कचनी ! मेरे सम्मुख सहस्रो नारियो के पद-नूपुर मुखरित हुए किन्तु किसी ने मेरे मन में एक भी तरग नही उठाई—केवल तुम ···(चुप रह जाता है ।)

कंचनी—तुमने विश्वामित्र की भाँति अपना स्वर्ग बनाना चाहा जिसमें न प्रेम हो, न सौन्दर्य हो, न कला हो ।

मिहिरकुल—किन्तु मेरी मेनका, तुमने मेरा तप भग कर दिया । मेरे चट्टान जैसे वक्षस्थल को अपने नृत्य के अग-विक्षेपो के हथौड़ो से विदीर्ण कर दिया । मै डर गया अपनी दुर्बलता से । भाग गया गजो का चिघाड सुनने के मिस । भारत में वह मेरी प्रथम पराजय

थी। रूप और यौवन का मने इस प्रकार उपभोग किया है जैसे सिंह वलवान जवडो से मृग के मस्तक को चबाता है—किन्तु जब तुम सामने आई तो एक वार तो मेरी सर्वभक्षी वासना तीव्र हो उठी किन्तु दूसरे ही क्षण वह परास्त हो गई। मैं तुम्हारे साथ खेल नही कर सकता। तुम्हारी मधुर चितवन ने भीतर ही भीतर मेरी कठोरता को क्षत-विक्षत कर दिया। तुम्हारा नृत्य मेरी हिंसक वृत्ति को मूर्छित करने लगा—तुम्हारे गान के बाण ने मेरे गर्व का कलेजा चीर दिया—तभी पर्वत से गिरने वाले गज के चिंघाड ने मुझे स्वप्न-जगत से वाहर खीच लिया—और मै भाग खडा हुआ।

कचनी—क्या तुम सत्य कह रहे हो, मिहिरकुल !

[**मिहिरकुल मस्तक से राजमुकुट उतारकर कचनी के चरणों के पास रख देता है।**]

मिहिरकुल—मिहिरकुल के मस्तक का राजमुकुट किसी राजपुरुष के प्रयास से मेरे जीवित रहते किसी के चरणो पर झुक नही सकता—वह आज तुम्हारे चरण-कमलों के पास रखा है। मैं असत्य भाषण नही कर रहा।

कचनी—तव कितनी भयानक भूल हुई मुझ से। मैंने जिसे अपनी प्रथम पराजय माना वह मेरी प्रथम वास्तविक विजय थी।

मिहिरकुल—तुम्हारे रूप-यौवन और उन्मादमयी कला के सधे हुए शरो के क्षेत्र से वाहर हो जाना मेरे जीवन का प्रथम विवेक था। विश्व-विजय का आकाक्षी योद्धा नारी-रूप के पिंजरे में पालतू पछी वन कर वैठ जाए तो समझो वह अपने ही हाथ से अपनी आकाक्षाओं के भव्य भवन को धराशायी करता है। मै किसी भारतीय नारी के प्रेम-पाश में नही वॅधना चाहता था।

कचनी—और कचनी की कोमलता को प्रथम वार एक निर्मलतम व्यक्तित्व ने अज्ञात ही जकड लिया था। मे मन ही मन वल्लरी

की भाँति उसके सुदृढ पुरुषत्व-तरु से लिपट गई किन्तु जिसे मैंने वृक्ष समझा वह उन्मत्त गज की भाँति वल्लरी का वधन तोडता हुआ भाग गया।

मिहिरकुल—क्या सचमुच मुझे प्यार करने की अभिलाषा से तुम मेरे सैनिक-शिविर में आई थी।

कचनी—यह तो मै नही जानती, किन्तु इतना जानती हूँ कि केवल महाराज धन्यविष्णु का आग्रह मुझे नही लाया था। एक कुतूहल के, एक अज्ञात प्रेरणा के वश मे चली आई। मिहिरकुल के अत्याचारो की कहानियाँ कचनी के कानो में पडी थी—उसका हृदय उसके प्रति कठोर हो गया था। वह उससे घृणा करने लगी थी—किन्तु कब यह घृणा आकर्षण बन गई, कब आकर्षण में प्रीत के कीटाणु जन्मे वह कुछ नही जान पाई।

मिहिरकुल—और तुम उत्मत्त होकर मुझ पर अनग के दिव्यास्त्र अनवरत छोडने लगी—और मझे मैदान छोडकर भागना पडा।

कचनी—तुमने मुझ मे पुरुष की वास्तविक प्यास जाग्रत कर दी। अनेक पुरुष मेरे कला-भवन में आए और गए—किन्तु मैंने उन्हे कठपुतली से अधिक कुछ नही समझा। मै भी कठपुतली की ही भाँति उनके साथ नाची, प्रीत का अभिनय किया, किन्तु तुम्हे देखने के बाद मेरे तन-मन-प्राण तृष्णा मे जल उठे। विना वरसे वादल की भाँति तुम उड गए—तभी मेरे जीवन मे एक और युवक आया जो मेरे ही समान सगीत-कला में पारगत था—मै तुमसे ठोकर खाकर पूरे वेग से उसकी गोद मे जा गिरी।

मिहिरकुल—आज मै तुम्हे अपने बाहु-पाश में बाँधने को प्रस्तुत हूँ कचनी! मेरी जननी शिशुत्व में ही मुझे कठोर पृथ्वी पर पटक गई, मेरे पिता ने गोद मे बिठाने के स्थान पर अश्व की पीठ पर सवार रखा—मैंने अपने जीवन में सदा तडपते हुए शव, रक्त के सागर और नगर-ग्रामो को भस्म करने वाली लपटें ही देखी है।

अब मेरा प्यासा हृदय स्नेह की सुरा पीना चाहता है।

कचनी—मिहिरकुल ! तुम्हारे हृदय में चम्पा की गंध से अधिक तीव्र इस देश पर राज्य करने की इच्छा है जिसकी मिट्टी से मेरा तन बना है। तुम मेरे लिए चम्पा के फूल हो—मैं तुम्हारे लिए।

मिहिरकुल—भारत पर राज्य करने की लालसा मेरी पूरी नही होगी। विष्णुवर्धन के हाथों में भारत का सम्मान सुरक्षित है। मालव-प्रदेश से उसने मुझे निर्वासित कर दिया। यहाँ भी मुठभेड में हमें पराजित होना पड़ा है—अन्त का प्रारम्भ प्रारम्भ हो गया है—अन्त दूर नही है कचनी ! मैं चाहता हूँ सब कुछ गँवाकर—अब मनुष्य बन जाऊँ—तुम मुझे मनुष्य बना दो !

कचनी—मैं मिहिरकुल के उस तेज को प्यार करती हूँ जो सम्राट् बनना चाहता है।

मिहिरकुल—तो तुम जाओ ! जिस दिन मिहिरकुल सम्राट् बन जाएगा, तुम्हें बुला लेगा।

कचनी—जाती हूँ किन्तु जानते हो वेश्या लोभिन होती है—स्मृति-चिन्ह के नाम से आप से कुछ झटकना चाहती है।

[मिहिरकुल एक मुद्रिका देता है।]

मिहिरकुल—लो, इस पर मेरा नाम अंकित है।

कचनी—धन्यवाद !

[कचनी मुद्रिका लेकर उठती है, और मिहिर-
कुल भी कचनी के सहारे से उठता है।]

कचनी—अपने शिविर तक पहुँच जाओगे ?

मिहिरकुल—हाँ, पहुँच जाऊँगा। किन्तु तुम्हे सावधानी से जाना होगा।

कंचनी—नारी के समान कायर और नारी के समान दुस्साहसी कोई नही होता। विश्वास रखिए—मैं भी पहुँच जाऊँगी।

[दोनों का दो तरफ प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—वह मैदान जहां पर विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) की माता सती हुई थी। समय—सन्ध्या के कुछ पश्चात्। मैदान में जाजमों और कालीनों की बिछात की गई है। सबसे पिछले भाग में बहुमूल्य कालीनो पर मसनद रखे हुए है। एक पार्श्व में एक ऊंचा स्तम्भ खड़ा है जिसका शीर्ष दर्शकों को दिखाई नहीं देता। स्तम्भ लाल कपड़े से ढका हुआ है। मदाकिनी, वत्स और हेमचन्द्र का प्रवेश। तीनो सुन्दरतम वस्त्रालकारों से सुसज्जित हैं और बहुत ही प्रसन्न मुद्रा में हैं।]

हेमचन्द्र—मैं तो जानता था कि हूण-शक्ति का सूर्य सदा के लिए अस्त हो जाएगा। इसलिए मैंने विष्णुवर्धन के यश को युग-युग तक प्रकाशित रखने के लिए इस कीर्ति-स्तम्भ का निर्माण करा दिया है।

वत्स—सयोग तो देखो, श्रेष्ठी महोदय! जिस वितस्ता के तट पर किसी समय अजेय विदेशी शक्ति यूनानियो ने अलक्षेन्द्र के नेतृत्व में एक भारतीय नरेश पुरु को पराजित किया था उसी तट पर यूनानियो से अधिक दुर्धर्ष शक्ति हूणो को भारत की जनता ने सदा के लिए धूल में मिला दिया।

मदाकिनी—कितनी प्रसन्नता की बात है कि हूणो के विरुद्ध हमारे अतिम सघर्ष में न केवल मालव योद्धाओ को ही अपने प्राणो पर खेलना पडा, अपितु उत्तरापथ के सभी राजाओ और गणतन्त्रो एव दक्षिणापथ के अनेक महीपो ने स्वेच्छा से अपने सैनिक भेजे जो पूर्ण अनुशासन के साथ जनेन्द्र के नेतृत्व में शत्रु से लडे।

वत्स—ऐसा नही होता तो क्या मालव हूण-शक्ति को भारत से निर्मूल कर पाते। मालव प्रदेश से उखाड फेंके जाने पर मिहिरकुल ने

कुत्सित षडयन्त्र द्वारा कश्मीर-नरेश को मारकर काश्मीर पर तो अधिकार कर ही लिया था, उसे और अवकाश मिल जाता और हम उसे सीमात पर जाकर न घर दबाते तो भारत के भाग्याकाश में फिर काली घटाएँ छा जाती।

हेमचन्द्र—जनेन्द्र विष्णुवर्धन विदेशी सत्ता से भारत को मुक्त करने की इच्छा से सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में ग्रथित कर सके किन्तु क्या शाति-काल में यह एकता स्थिर रह सकेगी।

वत्स—जब तक देश के कुछ प्रदेशो में कुछ नृपतिगण अपनी व्यक्तिगत आकाक्षाएँ हृदय में पाले हुए शोभायमान है और कुछ प्रदेशो में छोटे-छोटे गणतन्त्र सिसकते हुए साँस ले रहे है तब तक पारस्परिक सघर्ष का अत नही आएगा और आए दिन उत्तर-पश्चिम से विदेशियो की काली घटाएँ हमारी सुख-शाति और स्वाधीनता की खेती पर ओले बरसाती ही रहेगी।

[विष्णुवर्धन और सुहासिनी का प्रवेश। हेमचन्द्र और वत्स नियमपूर्वक नमस्कार करते है।]

सुहासिनी—उत्सव का आयोजन तो ठीक-ठीक हो गया है न ?

हेमचन्द्र—विजयोत्सव का आयोजन कोई महायुद्ध का आयोजन तो है नही, जिसमें बहुत सोच-विचार करना पडे। जन-मन में स्वय ही उत्साह का समुद्र लहरा रहा है—वह अपने उद्धारक, भाग्य-विधाता जनेन्द्र के दर्शन करना चाहते है और श्रद्धा की पुष्पाजलि चढाना चाहते है।

विष्णुवर्धन—यह लाल वस्त्र के आवरण में क्या है ?

हेमचन्द्र—जनता की अपने जनेन्द्र के प्रति जो श्रद्धा है वह इस कीर्ति-स्तभ के रूप में प्रकट हो गई है। आप उधर युद्ध में प्राणो की बाजी लगाए हुए थे इधर हम लोगो ने इस कीर्ति स्तभ की रचना कर डाली। कवि-शिरोमणि वत्स भट्ट ने युद्ध से लौटने पर एक

प्रशस्ति लिख दी जो इस पर अंकित कर दी गई है। आज आपके ही कर-कमलो से इसका अनावरण होगा।

विष्णुवर्धन—विजय की स्मृतियाँ, कीर्ति-स्तम्भ, वीर पुरुषो की समाधियाँ आदि राष्ट्र के प्राणो को उत्साह-प्रदान करने का कार्य अवश्य करती है, किन्तु यदि कीर्ति-चिह्न व्यक्ति-पूजा के चिह्न बन जाएँ तो इनसे हानि भी हो सकती है। मै जानना चाहता हूँ वत्स, कि तुमने क्या प्रशस्ति लिखी है।

[वत्स एक कागज़ अपने अँगरखे में से निकाल कर देता है। विष्णुवर्धन हाथ में लेकर एक दृष्टि डालता है, फिर सुहासिनी को देता है]

विष्णुवर्धन—देखा, इस पगले वत्स ने क्या लिखा है ? पढो, ज़रा ज़ोर से पढो।

सुहासिनी—"जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधर्मन ने उन प्रदेशो को भी जीता जिन पर गुप्त सम्राटो का आधिपत्य नही था और न ही जहाँ राजाओ के मुकुट को ध्वस्त करने वाली हूणो की आज्ञा ही प्रवेश कर पायी थी। लौहित्य से लेकर महेन्द्र पर्वत तक और गगा से—स्पष्ट हिमालय से—लेकर पश्चिम पयोधि तक के प्रदेशो के सामत उसके चरणो पर लोटे। मिहिरकुल ने भी, जिसने भगवान् शिव के अतिरिक्त और किसी के सामने सिर नही नवाया, अपने मुकुट के पुष्पो के द्वारा उसके युगल चरणो की अर्चना की।"

विष्णुवर्धन—क्यो वत्स, तुमने सारा काव्य-चमत्कार मुझ पर ही खर्च कर दिया। इतनी अतिशयोक्ति क्यो की तुमने ? मेरा सम्मान करने के लिए कितने नरेशो का अपमान कर डाला तुमने। मेरे विचार में इस कीर्ति-स्तभ को आज ही धराशायी कर देना चाहिये।

हेमचन्द्र—आप निरकुश नरेश नही है जो जनेच्छा को पद-मर्दित कर सकें। इस पर अंकित अक्षरो में वत्स भट्ट नही, जनता की श्रद्धा की मूक वाणी बोल रही है। क्या आप सत्ता प्राप्त कर प्रथम कार्य

नही हो। यह सामने जो कीर्ति-स्तम्भ खड़ा है उसके मूल में आधार-शिला के रूप में तुम भी हो—इसे मत भूलो। वेश्या होना ही अपमानजनक बात नही। वेश्या-जीवन की भी एक नैतिकता है। धन तुम्हारे तन को भले ही मोल ले सका हो—किन्तु उसने तुम्हारे धर्म को तो मोल नही लिया। देश-कार्य की स्वय-सेविकाओं में तुम सब से आगे रही। आज समय तुम्हें आदर न दे तो इससे तुम्हारा कुछ नही घटेगा। तुम्हारा आत्म-सन्तोष ही तुम्हारे कार्य का पुरस्कार है, कचनी।

कचनी—जनेन्द्र! तुमने मुझे जिला लिया। मैंने सोचा था आज स्वाधीनता के उत्सव मे अपने जीवन का अंतिम नृत्य दिखाकर सदा के लिए आँखें मूँद लूँगी—किन्तु नही मैं जीवित रहूँगी। जब तक दीपक में स्नेह है वह जलेगा।

महाज्ञान—जनेन्द्र, बाहर जनता आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही है।

हेमचन्द्र—जनेन्द्र, आप आसन ग्रहण करें ताकि सब स्थान ग्रहण कर सकें।

[विष्णुवर्धन आसन ग्रहण करता है, शेष व्यक्ति भी बैठते है]

विष्णुवर्धन—सब लोगो को आने दो।

[हेमचन्द्र बाहर जाता है। थोड़ी ही देर में जनता सहित अन्दर आता है।]

जनता—जनेन्द्र विष्णुवर्धन की जय! जनेन्द्र विष्णुवर्धन की जय!!

विष्णुवर्धन—आदरणीय महिलाओ एव भद्रपुरुषो! मुझे आपका उत्साह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। हमारे देश से विदेशी सत्ता का अंत हो गया—हम पूर्णत स्वाधीन हो गए। मैंने इसी स्थान पर पूज्यनीया माता जी की प्रज्वलित चिता के सम्मुख भारत से विदेशी सत्ता का नाश करने की शपथ ली थी वह आज पूर्णत पूरी हो गई है। उस समय मेरे पास सेना नही थी—युद्ध लड़ने योग्य

शस्त्र नही थे—धन नही था, मै किसी प्रदेश का राजा भी नही था—किन्तु मै जानता था कि मेरा देश विदेशियो के अत्याचार से पीडित है—विद्रोह की चिनगारी भीतर ही भीतर प्रत्येक के हृदय में सुलग रही है। मैंने उसे एक फूंक लगाई। ज्वाला प्रज्वलित हो उठी, जिसमे विदेशी सत्ता रुई के ढेर के समान जलकर भस्म हो गई। इसमें मेरा कोई चमत्कार नही है, जो कुछ हुआ है वह आप लोगो के वलिदान और तप-त्याग से हुआ। मै आप सवको धन्यवाद देकर आज के उत्सव के कार्यक्रम को आगे चलाने की प्रार्थना करता हूँ।

जनता—जनेन्द्र विष्णुवर्धन की जय ! जनेन्द्र विष्णुवर्धन की जय ! !

महाज्ञान—आज के उत्सव का प्रथम कार्य जनेन्द्र का सम्मान करना है, इस हेतु मालव-जनता ने जनेन्द्र विष्णुवर्धन को यशोधर्मन और विक्रमादित्य के विरुद से विभूषित करने का निश्चय किया है। वोलो जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधर्मन विक्रमादित्य की जय !

जनता—जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधर्मन विक्रमादित्य की जय !

विष्णुवर्धन—मालव-जनता ने मेरी सेवाओ का जो सम्मान किया है उसके लिए मै उनका कृतज्ञ हूँ। एक प्रकार से यह आप अपने ही श्रम और वलिदान को पुरस्कृत कर रहे हैं। मेरा आप से केवल इतना निवेदन है कि यदि प्रमादवश मुझ से कोई त्रुटि हो जाए तो मुझ पर कभी दया न करना। मेरे कारण देश का हित सकट-ग्रस्त हो तो मेरे अतीत को भूल जाना क्योकि व्यक्ति से देश वडा है। अव मेरी इच्छा से स्वाधीनता-सग्राम की तपस्विनी—सेविका कचनी—जनता का मनोरजन करेगी।

हेमचन्द्र—और अन्त में जनेन्द्र के यशस्वी कर-कमलो से कीर्ति-स्तभ का अनावरण होगा।

कंचनी—(नाचती और गाती है)

गा रहा है खग गगन में
मुक्त जीवन हो गया।

पींजरा टूटा पड़ा है
वध वधिक का हो गया।
खोल दी आँखें जवानी ने
बुढ़ापा सो गया।
ज्योति-सागर की तरंगों
में अँधेरा खो गया।

पा मलय का स्पर्श मृदु
उत्फुल्ल उपवन हो गया।
गा रहा है खग गगन में
मुक्त जीवन हो गया।

शस्य धरती पर नया है,
है पवन का मन नया,
जीर्णता को क्षार करके
हो गया है तन नया।
बोलता है धड़कनों में
आज परिवर्तन नया,

नृत्य नूतन हो गया है
गान नूतन हो गया।
गा रहा है खग गगन में
मुक्त जीवन हो गया।

[कचनी का गान समाप्त होता है।]

हेमचन्द्र—अब मैं जनता की ओर से जनेन्द्र से कीर्ति-स्तभ का अनावरण करने की प्रार्थना करता हूं।

[विष्णुवर्धन उठता है।]

जनता—(पूरे उत्साह से अनेक बार) जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधर्मन विक्रमादित्य की जय!

[पटाक्षेप]

गा रहा है खग गगन में
मुक्त जीवन हो गया।

पींजरा टूटा पखा है
अघ वधिक का हो गया।
खोल दीं आँखें जवानी ने
बुढ़ापा सो गया।
ज्योति-सागर की तरंगों
में अँधेरा खो गया।

पा मलय का स्पर्श मृदु
उत्फुल्ल उपवन हो गया।
गा रहा है खग गगन में
मुक्त जीवन हो गया।

शस्य धरती पर नया है,
है पवन का मन नया,
जीर्णता को क्षार करके
हो गया है तन नया।
बोलता है धड़कनों में
आज परिवर्तन नया,

नृत्य नूतन हो गया है
गान नूतन हो गया।
गा रहा है खग गगन में
मुक्त जीवन हो गया।

[कचनी का गान समाप्त होता है।]

हेमचन्द्र—अब मैं जनता की ओर से जनेन्द्र से कीर्ति-स्तंभ का अनावरण करने की प्रार्थना करता हूँ।

[विष्णुवर्धन उठता है।]

जनता—(पूरे उत्साह से अनेक बार) जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधर्मन विक्रमादित्य की जय।

[पटाक्षेप]